प्रेमचन्द : एक विवेचन

डॉ० इन्द्रनाथ मदान



राजकमल प्रकाशन
दिल्ली इलाहाबाद बम्बई

मेरे भैया! मेरे चँदा! मेरे अनमोल रत्न!
तेरे बदले, मैं ज़माने की कोई चीज़ न लूँ।

[redacted]

सरला कौल

प्रेमचन्द : एक विवेचन

प्रेमचन्द : एक विवेचन

वीणा दुल्लू
एम० ए० उत्तरार्द्ध
हिन्दी विभाग
जम्मू-कश्मीर विश्वविद्यालय
कश्मीर मण्डल
अमरसिंह बाग

डॉ० इन्द्रनाथ मदान एम० ए०, पी-एच० डी०

अध्यक्ष

हिन्दी विभाग, पंजाब यूनिवर्सिटी

जलंधर



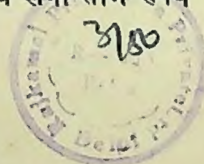
राजकमल प्रकाशन

दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

प्रकाशक
राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड,
दिल्ली

दूसरा संशोधित संस्करण

मूल्य सवा तीन रुपये



मुद्रक
गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस,
दिल्ली

आमुख

प्रेमचन्द हिन्दी के ऐसे श्रेष्ठतम उपन्यासकार हैं, जिनके ग्रन्थों में दमन और उत्पीड़न के युग के समाज की अवस्था का यथार्थ चित्रण और प्रतिबिम्ब मिलता है। उन्होंने उन समस्याओं और मान्यताओं का स्पष्ट चित्र अंकित किया है जो मध्यवर्ग, ज़मींदार, पूँजीपति, किसान, मज़दूर, अछूत और समाज से बहिष्कृत व्यक्तियों के जीवन को संचालित करती हैं। साहित्य के क्षेत्र में वे साहित्य के साथ-साथ समाज के भी स्रष्टा कहे जा सकते हैं। प्रस्तुत पुस्तक में उनके समस्त उपन्यासों और कुछ प्रतिनिधि कहानियों का अध्ययन इस दृष्टि से करने की चेष्टा की गई है कि जिससे हम उनके युग के अनुकूल उनके मस्तिष्क और कला के विकास-क्रम को देख सकें। यह आवश्यक भी है; क्योंकि कोई भी लेखक, चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो, अपने समय की उपज होता है। वह अनजान में ही उन सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को अपना लेता है, जो एक विशेष युग के व्यक्ति को प्रभावित करती हैं। सामाजिक परिस्थिति के द्वारा लेखक के मस्तिष्क और कला का अध्ययन करने का अर्थ केवल उस घनिष्ठ सम्बन्ध पर बल देना है, जो साहित्य और समाज के बीच स्थापित है।

प्रेमचन्द यदि महान् हैं तो इसलिए कि उन्होंने किसानों के मानसिक गठन और मध्यवर्ग के दृष्टिकोण को उस समय गम्भीर विश्वास और उत्साह के साथ वाणी दी, जिस समय इस देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे थे। उनके ग्रन्थों में आर्थिक शोषण और सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध कृषक वर्ग की पुञ्जीभूत घृणा और कटुता की झलक मिलती है। उनमें उस पूँजीवाद या पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते हुए प्रभाव के विरुद्ध निम्न-मध्यवर्ग के विरोध और घृणा के भी

दर्शन होते हैं, जो ग्राम्य-जीवन की पुरातन व्यवस्था को ध्वंस और नष्ट-भ्रष्ट करने का उत्तरदायी है। देहात में रहने वाले प्रेमचन्द उन क्रांतिकारी परिवर्तनों से भली-भाँति परिचित थे, जो १९०५ से १९३६ तक के संघर्षपूर्ण युग के मानव के जीवन में हो रहे थे। प्रेमचन्द का व्यक्तित्व तब सबसे अधिक विकसित होता है जब वे निम्न-मध्यवर्ग और कृषकवर्ग का चित्रण करते हैं। उनके श्रेष्ट उपन्यासों की पृष्ठभूमि किसानों की जिन्दगी है। उन्होंने उनके कठिनाइयों और संघर्षों से भरे जीवन को महान् कौशल के साथ चित्रित किया है। उनकी कृतियाँ इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं हैं कि उनमें किसानों और निम्न-मध्यवर्ग के लोगों का वर्णन है बल्कि इसलिए भी कि उन्होंने उनमें अपने युग की प्रतिगामी प्रवृत्तियों का भी विरोध किया है। यद्यपि उनके अपने वर्ग के सीमित दृष्टिकोण और आदर्शों ने उनके मार्ग में बाधा पहुँचाई, तथापि वे इस ऐतिहासिक युग के एक प्रगतिशील लेखक थे।

जिस वर्ग-संघर्ष को उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में इतनी स्पष्टता से चित्रित किया है, उसी वर्ग-संघर्ष की दृष्टि से प्रस्तुत पुस्तक में उनकी कला का विवेचन और उनके मस्तिष्क का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। यह विषय का एक नवीन स्वरूप है। मेरा यह विश्वास रहा है कि सामाजिक परिस्थिति के द्वारा उनके ग्रन्थों का अध्ययन करने से उनके व्यक्तित्व और उनकी कला को समझने में अधिक सुविधा होगी। उन्होंने दस उपन्यास और लगभग तीन सौ कहानियाँ लिखी हैं। एक ऐसे व्यक्ति के लिए, जिसके पास साधन और अवकाश की कमी हो, यह बड़ी भारी सफलता है। ऐसी कठिन परिस्थितियों में दस हजार पृष्ठों से भी अधिक लिखना एक आश्चर्य है। इससे यह स्पष्ट है कि साहित्य के लिए उनमें अद्भुत लगन थी।

—इन्द्रनाथ मदान

सूची

: १ :

पूर्व पीठिका

यह आवश्यक है कि हम आरम्भ में लेखक के मस्तिष्क और युग तथा उनके पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध का सामाजिक विश्लेषण कर लें। जो लोग साहित्यिक आलोचना की समाजशास्त्रीय प्रणाली को अपनाते हैं, वे सब अपने निर्णयों का आधार ऐतिहासिक भौतिकवाद को बनाते हैं। समाजशास्त्रीय प्रणाली अपने समस्त रूपों में सौन्दर्यशास्त्र प्रणाली से भिन्न होती है। इसलिए जहाँ सौन्दर्यशास्त्र प्रणाली सौन्दर्यानुभवों की पूँजी का वर्णन-भर करती है, वहाँ सामाजशास्त्रीय प्रणाली साहित्यिक कृति की व्याख्या और अध्ययन पर ही लक्ष्य रखती है। जिस सामाजिक वातावरण में किसी साहित्यिक कृति का जन्म होता है, उस सामाजिक वातावरण के साहित्यिक सूत्रों की छानबीन करने पर एक उत्कृष्ट साहित्य की उपलब्धि होती है। इसकी क्रमशः तीन सीढ़ियाँ होती हैं। पहले तो यह समाज-विशेष की आर्थिक व्यवस्था पर विचार करती है। फिर इस आर्थिक आधार से यह उसकी सामाजिक गतिविधि और उसके वर्गभेद की व्याख्या की ओर बढ़ती है। उसके पश्चात् इन दो प्रकार के अध्ययनों से वह अपने सामाजिक मनोविज्ञान, अपनी विचार-धारा, अपनी मानसिक तथा बौद्धिक स्थिति और अपने विश्व-सम्बन्धी दृष्टिकोण को स्पष्ट करती है, जो आर्थिक और सामाजिक तत्त्वों की सम्मिलित प्रतिक्रिया होती है। आर्थिक और सामाजिक तथ्यों का प्रभाव साहित्य पर सीधा नहीं पड़ता; वे अपना कार्य मनोवैज्ञानिक और विचार-धारा-सम्बन्धी मध्यवर्ती तथ्यों द्वारा करते हैं, वे वर्ग के मनोविज्ञान

अथवा विचारधारा को स्थिरता-भर प्रदान करते हैं। विचारधारा या सामाजिक चेतना का अन्तिम और प्रत्यक्ष रूप भौतिक अस्तित्व द्वारा निर्धारित नहीं होता। यह अत्यन्त सरल और स्थूल धारणा, कि आर्थिक सम्बन्धों पर विचारधारा स्पष्ट और प्रत्यक्ष रूप में आधारित होती है, साहित्य की समाजशास्त्रीय व्याख्या से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। अनेक विचारधारा-सम्बन्धी रचनाएँ, जिनमें साहित्य भी सम्मिलित है, आर्थिक आधार से पृथक्-पृथक् मात्रा का सम्बन्ध रखती हैं। किसी कृति में आर्थिक आधार या तो लेखक के राजनीतिक विचारों के माध्यम से प्रकट होता है या, उनके अभाव में, उन नीतियों और पाप-पुण्य की धारणाओं द्वारा प्रकट होता है, जिन्हें कलाकार अपने वातावरण से ग्रहण करता है। कलाकार के दर्शन या जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण को उसकी कृति से पृथक् करना अनुचित है। (विचारक प्रेमचन्द को कलाकार प्रेमचन्द से अलग नहीं किया जा सकता) कोई भी ऐसा प्रयत्न, जिसमें आधार और उस पर आधारित रचना की भौतिकवादी धारणा की उपेक्षा की गई हो और कोई भी ऐसी चेष्टा, जिसमें किसी कृति को पूर्णरूपेण स्वयं परिचालित या आर्थिक तत्त्वों से सीधा प्रभाव ग्रहण करने वाली मानने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती हो, साहित्य के समाजशास्त्रीय अध्ययन से कोई सम्बन्ध नहीं रखती।

प्रेमचन्द यदि महान् हैं तो इसलिए कि उन्होंने किसानों के मानसिक गठन और मध्यवर्ग के दृष्टिकोण को उस समय अत्यन्त विश्वास और उत्साह के साथ वाणी दी, जिस समय इस देश के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। सामन्ती अर्थशास्त्र और सामन्ती जीवन की पुरानी नींव—वह नींव जो युग-युग से दृढ़तापूर्वक ग्राम्य-जीवन को सँभाले थी, विदेशी सत्ता और पूँजीवाद, नाश तथा दरिद्रता की बढ़ती हुई लहर के विरुद्ध हुए राष्ट्रीय संघर्ष के इस युग में हिल गई। उनके ग्रन्थों में आर्थिक शोषण और सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध कृषकवर्ग की पुन्जीभूत घृणा और कटुता की झलक मिलती

है। उनमें उस पूँजीवाद या पश्चिमी सभ्यता के बढ़ते हुए प्रभाव के विरुद्ध निम्न मध्यवर्ग के विरोध और घृणा के भी दर्शन होते हैं, जो इस युग में देश में व्याप्त हो रही थी।

वह युग (१९०५-१९३६), जिसमें प्रेमचन्द ने अपने साहित्य का सृजन किया, सामन्तशाही के आभिजात्य में बदलने का संक्रान्ति-काल था। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपनी आत्म-कथा में इस युग का अत्यन्त स्पष्ट चित्र अंकित किया है। वे कहते हैं—"वास्तव में समस्त राजनीति मध्यवर्ग तक ही सीमित थी और नरमदली और गरमदली दोनों समान रूप से उसमें भाग लेकर विकास के लिए भिन्न-भिन्न मार्ग बताते थे। नरमदली नेता विशेष रूप से उन मुट्ठी-भर उच्चवर्ग के लोगों का नेतृत्व करते थे जो ब्रिटिश शासन में खूब फले-फूले थे और कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं चाहते थे, क्योंकि इससे उन्हें भय था कि कहीं उनकी वर्तमान स्थिति और स्वार्थ ख़तरे में न पड़ जायँ। गरमदली नेता भी मध्यवर्ग के निम्न भाग का प्रतिनिधित्व करते थे। कारखानों में काम करने वाले वे मज़दूर, जिनका बहुत-सा भाग युद्ध की भेंट चढ़ चुका था, कुछ स्थानों में सामान्य रूप से संगठित थे और उनका प्रभाव भी बहुत कम था। किसान जड़, दरिद्रताग्रस्त, उत्पीड़ित और अपने दुर्भाग्य को रोने वाला था और हाथ-पर-हाथ धरे बैठा हुआ सरकार, जमींदार, साहूकार, छोटे सरकारी अफ़सर, पुलिस, वकील और पंडे-पुजारियों द्वारा शोषित हो रहा था।" एक ओर तो जमींदारी प्रथा के विरुद्ध गाँवों में वह पुराना और निरन्तर बढ़ने वाला असंतोष था, जिसने १९२०-२२ और १९३०-३२ के राष्ट्रीय आन्दोलन में परिपक्वता प्राप्त की और दूसरी ओर उस मजदूरवर्ग का आकस्मिक उत्थान था, जो पूँजीवाद के विकास के साथ-साथ नवीन शक्ति लेकर जागा था। देहात में रहने वाले प्रेमचन्द उन सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों से भली भाँति परिचित थे, जो जनता के जीवन में हो रहे थे। वह जानते थे कि किसानों पर लगान का बोझ दिन-दिन बढ़ रहा है और उसके कारण उनकी कमर टूटी जा रही

है। उन्होंने देखा था कि किस प्रकार गैर-कानूनी तरीके से उनको खेतों और झोंपड़ियों से बेदखल कर दिया जाता है, कैसे वे उनके रक्त को चूसने वाले कारिन्दों, महाजनों और पुलिस के सिपाहियों से घिरे हैं। उन्होंने यह भी देखा था कि कैसे वे दिन-दिन-भर कठिन परिश्रम करते हैं और इस प्रकार जो पैदा करते हैं उस पर उनका कोई अधिकार नहीं होता; प्रत्युत उसके बदले में उन्हें मार, अभिशाप और भूखे पेट सो रहना ही पुरस्कार-स्वरूप मिलता है। उस समय गाँवों की जो दशा थी उसका पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अत्यन्त सुन्दरता से विश्लेषण किया है—"ज़मीन उपजाऊ थी, परन्तु उस पर बोझ बहुत भारी था; सामग्री कम थी और उस पर आधारित लोगों की संख्या बहुत ज्यादा थी। ज़मीन की भूख का लाभ उठाकर ज़मींदार गैर-कानूनी रूप से बहुत भारी लगान वसूल करता था—गैर-कानूनी इसलिए कि कानूनी तौर पर कुछ निश्चित प्रतिशत से अधिक लगान बढ़ाने का उसे अधिकार न था। किसान कोई चारा न देखकर महाजन से रुपया उधार माँगता था तथा लगान चुकाता था और तब अपने ऋण या लगान को चुकाने में असमर्थ होने पर वह बेदखल कर दिया जाता था और उसे अपने सर्वस्व से हाथ धोने पड़ते थे।" 'गोदान' का होरी ऐसे किसान का जीता-जागता चित्र है, जो भूख, बीमारी, उपेक्षा, पीड़ा और मृत्यु के साथ संघर्ष करता है। "यह पुराना रिवाज था और बहुत समय से कृषकवर्ग की दरिद्रता बढ़ती चली आ रही थी। आर्थिक स्थिति ने एक मस्तिष्क को चेतना दी और देहात में जागरण का शंखनाद हुआ।" १९२०-२२ का किसान-विद्रोह उत्तर प्रदेश के कुछ ही जिलों तक सीमित था। लेखक का मत है कि किसान-आन्दोलन के लिए अवध विशेष रूप से उपयुक्त क्षेत्र था। यह ताल्लुकेदारों का प्रदेश था और है। यहाँ ज़मींदारी-प्रथा अपने निकृष्टतम रूप में दिखाई देती है। पंडित जवाहरलाल नेहरू का कहना है कि किसान-आन्दोलन कांग्रेस-आन्दोलन से बिलकुल भिन्न था और इसका असहयोग-आन्दोलन से कोई सम्बन्ध न था।

'ज़मींदार' शब्द के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि ज़मींदार बड़े भूमिपति नहीं हैं। जिन प्रदेशों में रैयतदारी प्रथा है वहाँ इसका अर्थ उस किसान से है, जो अपनी ज़मीन का मालिक भी हो। यहाँ तक कि जिन प्रदेशों में विशेष प्रकार की ज़मींदारी प्रथा है, वहाँ इसका अभिप्राय कुछ बड़े ज़मींदारों से है, कुछ हज़ारों मध्यवर्ग के सीर जोतने वाले किसानों से है, और कुछ उन लाखों व्यक्तियों से है, जो घोर दरिद्रता का जीवन बिताते हैं। उत्तर प्रदेश की जन-गणना से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मोटे तौर पर पन्द्रह लाख व्यक्ति ऐसे हैं, जिनको ज़मींदार कहा जा सकता है। इनमें से ९९ प्रतिशत की स्थिति वही है, जो एक दरिद्रतम किसान की होती है। पूरे प्रदेश में बड़े-बड़े ज़मीन के मालिक भी पाँच हज़ार से अधिक नहीं हैं। केवल पाँच सौ को बड़े ज़मींदारों और ताल्लुकेदारों में गिना जा सकता है। जिन अनेक समस्याओं को प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों और कहानियों में उठाया है, उनको समझने के लिए ज़मींदारी प्रथा का पूरा-पूरा ज्ञान आवश्यक है। इस ज्ञान के आधार पर उनके ग्रन्थों का अध्ययन अधिक सुगमता से किया जा सकता है और इससे उनके चरित्रों तथा सामाजिक उद्देश्यों को भी अधिक अच्छे ढंग से समझा जा सकता है। कहानियों के बहुत से पात्र, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लिया, ग़रीब किसानों और मध्यवर्गीय ज़मींदारों से लिये गए हैं। बड़े ज़मींदारों ने अपने को संघर्ष से अलग रखा। उनमें महानता की विशेषताएँ भी नहीं थीं। जहाँ तक उनके वर्ग का सम्बन्ध है, वे शारीरिक और मानसिक रूप से पतित हो चुके थे। प्रेमचन्द ने दिखाया है कि उनके दिन बीत चुके थे। कृषकवर्ग युगों की तन्द्रा से जाग रहा था और नवीन चेतना पा रहा था। इसका कुछ श्रेय जिस विशिष्ट व्यक्ति के नेतृत्व को था, वह था रामचन्द्र; जिसने प्रान्त के उन ज़िलों में किसानों को आन्दोलन के लिए संगठित किया, जिनमें दरिद्रता असह्य हो उठी थी। किसानों के सामूहिक प्रदर्शन पर पुलिस ने गोलियाँ चलाईं और बहुत-से आदमी मारे गए। यह कहा

जाता है कि ज़मींदारों और पुलिस की सम्मिलित शक्ति का उन्होंने पूरे साल-भर तक डटकर मुकाबला किया। यह जेल जाने से पहले की वह तैयारी थी, जिसे कांग्रेस ने १९२१ में आरम्भ किया था। इसमें भी किसानों ने पूरा-पूरा भाग लिया। प्रेमचन्द ने इस सबको सोचा-समझा था और वह इसलिए कि उन्होंने गाँव में रहकर इन जन-आन्दोलनों को अपनी आँखों से देखा था।

१९२९ में कीमतों के गिरने से दुनिया में निराशा की जो लहर आई उसने कृषि-सम्बन्धी एक महान् संकट पैदा कर दिया। इसी महान् भारतीय नेता के शब्दों में १९२८ का वर्ष ऐसा था जिसमें समस्त देश-भर में निरन्तर राजनीतिक हलचल बनी रही। उस समय जनता को आगे बढ़ाने वाला एक नया ही जोश दिखाई दिया। तत्कालीन विभिन्न दलों में एक नई चेतना विद्यमान थी। इसका प्रमाण मज़दूर-किसान और मध्यवर्ग के युवकों में मिल सकता था। इस समय ट्रेड यूनियन-आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। ट्रेड यूनियन कांग्रेस पहले से ही दृढ़ और प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था थी। इसकी विचारधारा अधिकाधिक लड़ाकू और अतिवादी होती जा रही थी। किसान भी आन्दोलित थे। उत्तर प्रदेश और गुजरात में यह विशेष रूप में उल्लेखनीय घटना थी, जहाँ विरोध में होने वाली भारी-भारी सभाएँ होना साधारण बात थी। इस बात का अनुभव किया गया कि किसानों के लिए बनाया गया वह नया कानून, जिसने जीवन-भर के लिए पट्टे का अधिकार तथा अन्य बहुत-सी सुविधाएँ पैदा कर दी थीं, किसानों के दुर्भाग्य को तनिक भी कम नहीं कर सका था। इस युग की प्रमुख राजनीतिक घटनाओं में उत्तर प्रदेश का १९३० का कर-बन्दी आन्दोलन और १९३१ का दिल्ली-पैक्ट महत्त्वपूर्ण थे। इस पैक्ट में सरकार के साथ समझौते की नीति का स्पष्टीकरण है। पंडित गोविन्दवल्लभ पन्त को प्रदेशीय सरकार के साथ सम्पर्क स्थापित करने के लिए विशेष अफसर नियुक्त किया गया। कृषि-सम्बन्धी संकट की वास्तविकता, खाद्य-पदार्थों के

मूल्य में बेहद कमी होने और औसत किसान की लगान अदा करने की असमर्थता की बात को स्वीकार किया गया। साधारणतः सरकार ने ज़मींदारों से बातें कीं। ज़मींदारों को लगान कम करने या उसे माफ़ करने के लिए कहा गया। ज़मींदारों ने कोई भी ऐसा कार्य करने से तब तक के लिए मना कर दिया जब तक कि सरकार स्वयं अपने द्वारा माँगे हुए लगान का एक अंश कम न कर दे। बहुत समय तक कोई कार्यवाही नहीं की गई। इस युग की राजनीतिक परिस्थिति का विस्तृत विवेचन हमें 'कर्मभूमि' के समझने और अध्ययन करने में सहायक होगा। 'कर्मभूमि' इस युग के पश्चात् लिखा गया एक महान् ग्रन्थ है—ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें इस युग में घटने वाली छोटी-से-छोटी घटना का भी उल्लेख मिलता है। यह उपन्यास इस युग की घटनाओं पर ही नहीं लिखा गया है वरन् उसमें उन व्यक्तियों के भी दर्शन होते हैं जिन्होंने इस महान् संघर्ष-काल में प्रमुख कार्य किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यास के नायक अमरकान्त की प्रेरणा के स्रोत पंडित पन्त ही हैं। वह ऐसा कार्य करता है जो संकट-काल में इस राजनीतिक नेता ने किया। कृषि-सम्बन्धी वस्तुओं के मूल्य में १९२९ में जो सहसा कमी हो गई, और जिसने कृषि की स्थिति को तीव्रता से बिगाड़ दिया, वह इस कहानी के सामान्य ढाँचे का प्राण है। इस आर्थिक मन्दी के कारण कृषि-सम्बन्धी ऋण बढ़ने लगा और भूमि की आय पर आधारित रहने वाले सभी वर्ग—ज़मींदार, मालिक-किसान और साधारण किसान—उन महाजनों के शिकार हो गए जिनका अस्तित्व विद्यमान परिस्थितियों में आदिम देहाती व्यवस्था को स्थिर रखने के लिए अनिवार्य था। किसान भूखों मरने लगा। महाजन और अधिक शक्तिशाली हो गया और उसने परिस्थिति से पूरा-पूरा लाभ उठाया। इसकी एक झलक 'गोदान' में दी गई है। इस उपन्यास में महाजनों द्वारा किसानों के उस क्रूर शोषण की कहानी वर्णित है, जिसमें किसान की बोटी-बोटी महाजन की भेंट चढ़ जाती है। परिणामस्वरूप उन नई ताक़तों के कारण, जो गाँव में काम कर रही थीं,

वह किसान जो अब तक अपनी ज़मीन का मालिक था, अब 'बनिया-ज़मींदार' का नौकर बन गया। ज़मीन जोतने वाले किसान बेदख़ल हुए भूमिहीन सर्वहाराओं के साथ मिल गए। होरी लगान पर खेत जोतने वाला किसान है। रुपया लगाने वाला या मालिक गाँवों से कोई जीवित सम्पर्क नहीं रखता। वह तो शहरों में रहता है और वहाँ अपना लेन-देन का कार्य करता है। 'गोदान' में ऐसे भी चरित्र हैं, जिनकी नियुक्ति लगान वसूल करने वाले एजेण्टों के रूप में हुई है—वे एजेण्ट, जो अपना कार्य मशीन की भाँति, अमानवीयता और क्रूरता के साथ करते हैं। यह कष्ट और भूख की दिल दहलाने वाली कहानी है। ज़मींदार के कारिन्दे अपने बैल और व्यक्तिगत सम्पत्ति रखते हैं। होरी मानवीय और दैवी दोनों प्रकार की शक्तियों द्वारा खाया जाता है। वह भूख और अशक्तता के कारण मृत्यु की गोद में सो जाता है।

प्रेमचन्द ने इस युग को ठीक-ठीक चित्रित किया है। उन्होंने इसे एक भावुक कलाकार की आँखों और एक गम्भीर विचारक के मस्तिष्क से देखा और अनुभव किया। उन्होंने युग की मूल समस्याओं का चित्रण तो किया परन्तु वे उसकी उलझनों को पूरी तरह से नहीं समझ पाए। वह महान् हैं, क्योंकि उन्होंने अपने समय के आधारभूत वर्गों के जीवन को समझा था। उन्होंने बहुसंख्यक जनता के जीवन को भी समझा और उसे अपनी कृतियों में अंकित किया। वह और भी महान् बने होते, यदि उन्होंने विकास के मार्गों को भी समझा होता। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में रूढ़िग्रस्त किसानों और निम्न मध्यवर्गों की मानसिक स्थिति और नवीन व्यवस्था के प्रति उनकी स्वाभाविक घृणा का दिग्दर्शन कराया है। इसने पूँजीवाद के विरुद्ध, शहर के विरुद्ध, विदेशी शासन के विरुद्ध और उस सबके विरुद्ध, जो प्राचीन परम्परा को नष्ट कर रहा था, क्रोध और घृणा दोनों को जागृत किया। सूरदास इस परम्परा का प्रतीक है। 'रंगभूमि' में लेखक का विरोध उस पूँजीवाद और मशीन-सभ्यता के विरुद्ध व्यक्त हुआ है, जिसने पारस्परिक सहयोग पर

आधारित ग्राम्य-व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। सरकार और उसके एजेण्टों के खिलाफ़ उनकी उत्साहपूर्ण, उत्कट और तीव्र विरोध-भावना हमारा ध्यान आदिम प्रजातन्त्र प्रणाली की ओर खींचती है। वस्तुतः यही उनका जीवन या जगत् के प्रति दृष्टिकोण है, जो उनकी कृतियों और विभिन्न वर्गों तथा कांग्रेस के सहित उनके सामाजिक विभागों के बीच की महत्त्वपूर्ण कड़ी का काम करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि टाल्स्टाय और गांधी ने विश्व के प्रति उनके दृष्टिकोण को निश्चित किया है और उन्होंने उनके मस्तिष्क को प्रभावित किया है। गांधीवादी विचार-धारा ने उनके जीवन के प्रति दृष्टिकोण को इस सीमा तक निर्मित किया है कि वह पूर्णरूप से अपने को अपने गुरु से प्रभावित पाता है।

प्रेमचन्द, जिन्होंने कि इस विचारधारा को अपनाया है, यथार्थ के चित्रण के समय पूर्व-निश्चित धारणाओं से ही काम लेते हैं। कोई भी लेखक, चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो, अपने युग की उपज होता है। वह प्रकृति और समाज का अध्ययन और अनुशीलन करते समय जीवन और उसकी समस्याओं के सम्बन्ध में पूर्व-निश्चित दृष्टिकोण को ही आधार बनाता है। ठोस सामग्री के प्रति उसका दृष्टिकोण, पात्रों के एक विशिष्ट सम्प्रदाय को स्पष्ट या अस्पष्ट करने की प्रवृत्ति का रहस्य उसके जीवन के प्रति दृष्टिकोण में ही निहित रहता है। कलाकार के दृष्टिकोण का प्रभाव उसकी कृति पर सीधा पड़ता है। यद्यपि वह अपने विचारों को प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त नहीं करता तथापि जिन घटनाओं और पात्रों को वह चित्रित करता है, उनका विषयगत महत्त्व उसके ग्रन्थ में निहित उसके दृष्टिकोण और उसके केन्द्रीय भाव को छोड़कर और किसी वस्तु का स्पष्टीकरण नहीं करता। यदि गहराई से देखा जाय तो पता चलेगा कि प्रेमचन्द का पूर्ण रूप से आदर्शवादी दृष्टिकोण काल्पनिक है, लेकिन फिर भी उनमें ऐसा तत्त्व है जो निश्चित मूल्य और महत्त्व रखता है। वास्तव में उनके कार्य का जो महत्त्व है, वह आलोचना की दिशा है। विषय की दृष्टि से भी वह प्रगतिशील है। मध्यवर्ग की जिस

जनता का इस युग में प्रगतिशील कार्य करने के लिए आवाहन किया गया था, उसके लिए यह कार्य बड़ा लाभदायक रहा है। उनकी कलात्मक कृतियों में निकट अतीत की सभी बातें मिल जाती हैं। जिस समय वे मध्यवर्ग और किसानों का चित्रण करते हैं, उस समय उनका स्वरूप विशेष रूप से निखर उठता है। उनके श्रेष्ठतम उपन्यासों की पृष्ठभूमि किसानों की ज़िन्दगी है। वास्तव में उपन्यास सभी प्रकार के शोषण के विरुद्ध धर्मयुद्ध के समान हैं। भारतीय नवाबों के निन्दनीय कार्य, ज़मींदारों के अमानवीय अत्याचार, लगान की कुप्रथा—इन सबका लेखक द्वारा निर्ममता से भण्डाफोड़ किया गया है। लेखक किसानों की वेदना को इतनी तीव्रता से अनुभव करता है कि धनिकों के अत्याचार पर वह काँपता हुआ-सा जान पड़ता है। वह दुःख और निर्ममता से घृणा करता है। वह एक सन्त की न्याय से परिपूर्ण वाणी में अन्याय की निन्दा करता है। नग्न वास्तविकताओं को स्वयं देखने के कारण उसकी आत्मा कठोर हो गई है। वह अपने शोषकों का बुरे-से-बुरे रूप में चित्रण करता है। सच तो यह है कि कलात्मक वर्णन में संयम और कठोरता को बनाए रखने में वह अत्यन्त कुशल है।

यह बड़ा रोचक होगा, यदि हम उनकी तुलना एक दूसरे ऐसे बड़े बंगाली उपन्यासकार से करें, जिसने अपनी कलात्मक कृतियों में सामयिक समस्याओं का समाधान खोजने की चेष्टा की है। शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय (१८७६–१९३८) ने अपने उपन्यासों और कहानियों में मध्य और उच्च-मध्यवर्गीय ज़मींदारों का वर्णन किया है। वह अपने अध्ययन के लिए विषय के रूप में उनमें से शिक्षित लोगों को चुनते हैं। उन्होंने मध्यवर्ग के बुद्धिवादी समाज के जीवन का वर्णन अत्यन्त स्पष्टता और कलात्मक निःसंगता के साथ किया है। एक विधवा के जीवन की यन्त्रणाओं, कर्त्तव्यहीन ज़मींदारों की बुराइयों, तुच्छ षड्यन्त्र और ईर्ष्या-द्वेष, जायदाद के झगड़े, आचार और विचार की क्रान्ति, प्रेम-सम्बन्धी धारणा, विवाहित जीवन के प्रति दृष्टिकोण, सामाजिक संस्थाओं

और रूढ़ियों के सम्बन्ध में विचार, जाति-बन्धन की समस्या आदि का वर्णन उन्होंने अद्‌भुत यथार्थता और शक्ति के साथ विस्तार से किया है। जड़ता, अशिक्षा, अन्धविश्वास, अकर्मण्यता, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा और अभिमान में चूर ग्राम्य-जीवन का चित्रण उन्होंने कठोर अन्त-र्दृष्टि के साथ किया है और उसको आदर्श रूप देने की तनिक भी चेष्टा नहीं की। अस्त-व्यस्त दशा में पड़े हुए मध्यवर्ग के एक भाग के सामाजिक संघर्ष को कौशल से पकड़ने और उसे गहराई से समझने में उनकी प्रतिभा अद्वितीय है। मध्यवर्ग में संकीर्ण और सीमित जीवन को उन्होंने निर्मम यथार्थता और काल्पनिक दृष्टि से चित्रित किया है। वह एक ऐसे महान् भारतीय लेखक हैं, जिन्होंने अपने अभिजात्यवर्ग के पात्रों में पुरातन तथा नवीन यौवन और वृद्धावस्था, क्रान्ति और रूढ़िवादिता के बीच संघर्ष की भावना का लेखा-जोखा तैयार किया है। इस संघर्ष का विचित्र रूप और रंग उनके द्वारा अद्‌भुत ढंग से वर्णित हुआ है। वर्तमान अभिजात्यवर्ग का वह अंश, जो शिक्षित है, भयानक संघर्ष का शिकार है। जीवन के संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण वह अन्ध-कार में मार्ग खोज रहा है। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक है कि उनके ग्रन्थों का झुकाव निराशा और विषाद की ओर हो। प्रेम की भावना उनमें सर्वप्रधान है, जो उनके पात्रों के जीवन को सन्तुलित करती है। वास्तव में यह है भी स्वाभाविक कि प्रेम की प्रधानता हो। इस कठोर संसार में वह देखते हैं कि मनुष्य सुख के लिए लालायित है और कल्पना करते हैं कि वह उसे किसी-न-किसी प्रकार प्रेम द्वारा ही प्राप्त कर सकता है। प्रेम के द्वारा प्राप्त सुख उनके जीवन के आदर्श का अत्यन्त व्यापक प्रतीक है। शरत् ने तत्कालीन भारतीय परिस्थिति की करुण अवस्था का अनुभव किया और उसे यथार्थवादी तथा शक्तिशाली अभिव्यक्ति देने के लिए ऐसे नायक और नायिकाओं की सृष्टि की, जो सामान्यतः प्रेम और जीवन से निराश हो चुके थे।

रवीन्द्रनाथ ने, जोकि स्वयं उच्च-मध्यवर्ग के व्यक्ति थे, उस शिक्षित

बुद्धिवादी वर्ग की आशाओं-अभिलाषाओं को अभिव्यक्ति दी जो सामाजिक मान्यताओं को नये सिरे से नया रूप देने की माँग कर रहा था। 'गोरा' (१६१०) में युग के सामाजिक संघर्ष का ऐसा ही चित्र है। उपन्यास नवीन शक्ति और जीवन से ओत-प्रोत है। इसमें धार्मिक सम्प्रदायों, सामाजिक रूढ़ियों, राष्ट्रीयता और देश-भक्ति पर वाद-विवाद किया गया है। वाद-विवाद नुकीले तर्क और मिश्रित भावुकतापूर्ण उत्साह से संचालित है। उपन्यास का नायक गोरा उस भारतीय आत्मा का प्रतीक है, जो स्वतन्त्रता के लिए लालायित है और जो अपने सामाजिक और राजनीतिक बन्धनों के विरुद्ध संघर्ष कर रही है। वह उस निम्न-मध्यवर्ग का प्राणी है जो राष्ट्रीयता के प्रथम उत्थान (१६०५-१६१०) के समय राजनीतिक दृष्टि से सजग हो गया था। जैसे ही उसे इस बात का ज्ञान होता है कि वह निम्नवर्ग में जन्मा है, वैसे ही उसकी नेतृत्व की अभिलाषाओं का उफान समाप्त हो जाता है और वह फिर व्यक्तिगत जीवन की ओर लौट जाता है, जहाँ का सबसे बड़ा शासक प्रेम है। शीशमहल-सा उसका जीवन मध्यवर्गीय समाज के शिक्षित वर्ग के खण्ड-खण्ड होने की सूचना देता है। उपन्यास दमन और संघर्ष के युग के शिक्षित बुद्धिवादी वर्ग के विशिष्ट दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। लगभग अपने सभी उपन्यासों में टैगोर किसी विशेष समस्या को उठाते हैं और उस पर अस्पष्ट रूप से विचार करते हैं। उनकी कहानियों की घटनाएँ व्याख्या के भार से दबी हुई हैं। वे सौंदर्य और आकर्षण के साथ इन घटनाओं का उपयोग करते हैं, शिक्षित समाज के मानवीय सम्बन्धों को व्यक्त करने वाली गहन अन्तर्दृष्टि के प्रतीक के रूप में उनको परिवर्तित कर देते हैं। मानवतावादी और ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पन्न रवीन्द्रनाथ टैगोर उपदेश, राजनीति और दर्शन के सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्नों पर ही अपने ध्यान को केन्द्रित रखते हैं। वे प्रेम, सौंदर्य और कल्याण के सार्वजनिक महत्त्व पर ज़ोर देते हुए विश्व को बदलने की चेष्टा करते हैं। जीवन की समस्याओं का उनका समाधान निश्चय ही

सौंदर्यवादी है। इसके परिणामस्वरूप अपने युग के सामाजिक और आर्थिक संघर्ष को वे कभी स्थान नहीं देते।

प्रेमचन्द लेखकों के उस समाजशास्त्रीय वर्ग से सम्बन्धित हैं, जो नैतिक उपदेशों के एक विशेष स्वर को स्वीकार करता है और उपन्यास का उपयोग सामाजिक उद्देश्य और सामाजिक आलोचना के लिए करता है। वे सामयिक जीवन का चित्रण इसलिए करते हैं कि अपने वर्ग के सामाजिक और नैतिक आदर्शों की दृष्टि से उसके गुण-दोष का निर्णय हो सके। उनके उपन्यासों की केन्द्रीय भावना प्रमुख रूप से सामाजिक है। वे प्रथम भारतीय उपन्यासकार हैं, जिन्होंने किसानों और निम्न-मध्यवर्ग का चित्रण बड़ी तत्परता और ईमानदारी के साथ किया है। उन्होंने उनका अध्ययन एक तटस्थ दर्शक की भाँति नहीं किया वरन् वे स्वयं उनका अंग बन गए हैं। उनके यथार्थवाद के मूल में किसानों की आत्मा को नष्ट करने वाली यंत्रणा के दर्शन होते हैं। इस कारण उनके ग्रन्थ दरिद्र और पीड़ित मानवता के लिए मानवीय प्रेम के सन्देश के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। उनकी कला में गम्भीर मानवीय विशेषता है। प्रेमचन्द की कलात्मक कृतियाँ हमारे लिए इसलिए महत्त्वपूर्ण नहीं हैं कि उन्होंने किसानों और निम्न-मध्यवर्ग का चित्रण किया है वरन् इस-लिए भी कि उन्होंने अपनी युग की प्रतिक्रियात्मक प्रवृत्तियों के विरोध में लिखा है। वह महान् हैं, क्योंकि उन्होंने ऐसे संकटकालीन युग में लाखों किसानों के मन की स्थिति और विचारों को साकार रूप दिया, जबकि पूँजीवादी सभ्यता प्राचीन ग्राम्य-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर रही थी और गला घोंटकर किसानों को मारे दे रही थी। इस ऐतिहासिक युग में प्रेमचन्द ने उन मूल सामाजिक समस्याओं को समझा, जो कि समाधान चाहती थीं। समस्त सामाजिक वर्गों से इन समस्याओं का जो सम्बन्ध था, उसका स्पष्टीकरण भी उन्होंने किया और अपने उपन्यासों और कहानियों में उनका ठोस विवेचन किया।

: २ :

जीवनी

प्रेमचन्द लेखक के नाते तो महान् हैं ही, मनुष्य के नाते और भी महान् हैं। उनकी कला और उनके व्यक्तित्व में अत्यन्त निकट का और घनिष्ठ सम्बन्ध है। उनके जीवन की कहानी का संक्षिप्त अध्ययन उनकी कृतियों पर बहुत-कुछ प्रकाश डाल सकता है। आरम्भ में ही यह जान लेना चाहिए कि प्रेमचन्द अत्यन्त सीधे और सादा आदमी थे। वह बहुधा खुले गले का खादी का कुरता और स्वच्छ किन्तु ढीली-ढाली धोती पहनते थे। देखने में वे किसी प्रकार भी प्रभावशाली नहीं जान पड़ते थे। उनके पीले और धँसे हुए गालों पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं, जो कष्ट और श्रम की सूचक थीं। भाग्य कदाचित् ही उनके अनुकूल रहा हो। उन्होंने सदैव बालकों-जैसा भोलापन और सरसता दिखाई। उनका दूसरों के हृदय को मोह लेने वाला आचरण, उनका सीधा-सादा ढंग, उनका स्वाभाविक व्यवहार—इन सब बातों ने उनको नवागन्तुकों और मित्रों की दृष्टि में ऊँचा उठा दिया था। उनके मित्रों ने उनके जीवन की बहुत-सी ऐसी घटनाओं का संग्रह किया है, जिनसे उनके चरित्र की इन विशेषताओं का स्पष्टीकरण होता है। जो कोई भी उनसे मिलने आता था, उसीको वे लुभा लेते थे। एक बार मैं भी उनके आकर्षक व्यक्तित्व का अनुभव कर चुका हूँ। श्रीमती प्रेमचन्द तो इस सच्चे महापुरुष के आकर्षक व्यक्तित्व की साक्षी दे सकती हैं, जिसको जनता में उचित और महान् ख्याति प्राप्त हुई। जो लोग उनके सम्पर्क में आते थे, उनके लिए उनकी बातें सदैव उत्साह और प्रेरणा देने वाली होती थीं। नैतिक

आग्रह और सामाजिक लक्ष्य के साथ-साथ उनके जीवन में विनोद और हास्य का समावेश था। साहित्यकार का जीवन बिताने के लिए उन्होंने पूरी-पूरी तैयारी की थी। वह ऐसे बालक रह चुके थे, जो कष्ट सहते हैं और जानते हैं कि कष्ट का अर्थ क्या है। उन्होंने जीवन-भर अपने हृदय में ग़रीबों के प्रति उस सहानुभूति को जीवित रखा, जो उन आदमियों को कभी आसानी से नहीं मिल सकती जो ग़रीबी का जीवन नहीं बिताते। उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता उनका अधिकाधिक ग़रीब होना है। दूसरी विशेषता वह बदले की भावना थी, जो शीघ्र परिष्कृत होकर व्यक्ति और समाज के सुधार की कामना में बदल गई। उन्होंने उन हृदयहीनों के विरुद्ध जिहाद किया, जो सामाजिक और आर्थिक अन्याय के शिकार, निर्धनों और असहायों का शोषण करते थे। वे अवश्य ही ऐसे लेखक थे, जिन्हें अभिव्यक्ति की लगन होती है। उनके पास अभिव्यक्ति के उपयुक्त वास्तविक अनुभूति भी थी। उनको देखते ही ऐसा अनुभव होता था कि यह व्यक्ति अत्यधिक भावुक है और इसने कष्ट और श्रम का अनुभव किया है। उनकी धँसी हुई और स्वप्नदर्शी आँखों में, उनकी करुण और कोमल मुद्रा में, जीवन की दुःखद गाथा निहित थी।

उनका असली नाम धनपतराय श्रीवास्तव था। प्रेमचन्द तो उनका उपनाम था। वे ३१ जुलाई सन् १८८० में भारत के पवित्र नगर बनारस के पास एक छोटे-से गाँव लमही में पैदा हुए थे। श्रीवास्तव होने के नाते वे परम्परागत लेखकों की जाति कायस्थों से सम्बन्धित थे। उनके ग़रीब माता-पिता मुन्शी का पेशा करते थे और मुग़ल-अदालत से घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण उनके पूर्वजों ने इस्लामी और फारसी संस्कृति के तत्त्वों को अपना लिया था। यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात थी जिसने हिन्दू-मुस्लिम-एकता के सम्बन्ध में प्रेमचन्द को अपना दृष्टिकोण निश्चित करने में सहायता दी। उन्होंने अपने पिता की देख-रेख में एक मौलवी से पढ़ना शुरू किया, जो गाँव के छोटे-से स्कूल को चलाते

थे। उन्होंने अपने जीवन के नितान्त शैशव-काल में ही अपने मस्तिष्क का भी निर्माण कर लिया। उनके पिता को बहुत ही कम वेतन मिलता था और वे मुश्किल से एक छोटे-से पोस्ट आफ़िस में मामूली पोस्ट-मास्टर हो पाए थे। उस समय उनको ४०) मासिक वेतन मिलता था। श्रीमती प्रेमचन्द ने ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया है जिनसे उनके परिवार की घोर दरिद्रता का पता चलता है। जब वे बच्चे थे, तब उन्हें पतंग उड़ाने का बड़ा शौक था, लेकिन उनके पास खरीदने के लिए पैसे नहीं होते थे, इसलिए उन्हें पतंगों की लूट पर निर्भर रहना पड़ता था। जब तक उनके पिता जीवित रहे तब तक उनके लिए बारह आने से अधिक के जूते और चार आने गज़ से अधिक कीमत के कपड़े नहीं खरीदे जा सके। वे एक सम्मिलित परिवार के सदस्य थे। यह सम्मिलित परिवार ही भारतीय समाज-व्यवस्था का आधार है और इसीको उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में आदर्श रूप देने की चेष्टा की है। पूरा परिवार एक मकान की ऐसी गन्दी कोठरी में रहता था, जिसे उनके पिता ने डेढ़ रुपये महीने किराये पर लिया था। उस समय प्रेमचन्द मुश्किल से बारह वर्ष के थे। यद्यपि उनकी माता उसी समय मर गईं थीं जब कि वे सात वर्ष के थे तथापि वह उनके मस्तिष्क पर गहरी छाप छोड़ गईं थीं। माता और प्रथम प्रेम—यही दो तत्त्व ऐसे हैं जिनसे कोई कलाकार नारी की प्रतिमा बनाता है। प्रेमचन्द के मामले में उनकी माता ही थीं जिनको उन्होंने अपनी कहानियों का आदर्श बनाया। उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा, "वह एक महान् नारी थी। जैसा कि सभी अच्छी माताओं का स्वभाव होता है, कभी तो वह ममता की मूर्ति बन जाती थी और कभी अत्यन्त कठोर।" नारी के इस रूप के दर्शन उनकी कला-कृतियों में हो सकते हैं। उन्होंने सदैव मातृ-प्रेम के लिए सम्मान और प्रेम से पूर्ण श्रद्धाञ्जलि समर्पित की है। उनके पिता ने दूसरी शादी की। अबकी बार, दूसरी शादी करने के बाद, मरने की बारी उनके पिता की थी। प्रेमचन्द उस समय मुश्किल से

पन्द्रह वर्ष के थे। उनके पास एक भी पैसा न था और उनके कन्धों पर भार था सौतेली माँ और दो सौतेले भाइयों के पालन-पोषण का। इसी बीच उनको 'एक कुरूप और असभ्य स्त्री' के साथ जोत दिया गया। यह उनके पिता और परिवार के बड़े-बूढ़ों द्वारा की गई सामान्य शादी थी। वर-वधू की स्वीकृति का तो प्रश्न ही नहीं था। यह उनके ऊपर एक अतिरिक्त भार था, क्योंकि उनकी पत्नी उनकी सहायिका न होकर उनके लिए एक परेशानी ही अधिक थी। यह अनमेल सम्बन्ध ही नहीं था, बल्कि पूर्ण रूप से असफल भी सिद्ध हुआ। श्रीमती प्रेमचन्द उन्हें छोड़कर अपने पिता के यहाँ चली गईं और उन्हें उनके लिए कई वर्षों तक गुज़ारे के लिए खर्च देना पड़ा।

पिता की मृत्यु ने उनकी ज़िम्मेदारियों का बोझ और बढ़ा दिया। वे उस बोझ के नीचे पूरी तरह पिस गए, लेकिन उन्होंने कभी धैर्य नहीं छोड़ा। वे पहले से ही इतने ग़रीब थे कि अपनी स्कूली पढ़ाई नहीं चला सकते थे। एक बार उन्हें रेल-किराया चुकाने के लिए सर्दी के दिनों में अपना ऊनी कोट बेचना पड़ा। दस रुपये में से पाँच रुपये उन्हें अपने घर का खर्च चलाने के लिए भेजने पड़ते थे। अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए उन्हें पाँच रुपये के ट्यूशन के लिए दस मील पैदल जाना पड़ता था। खाना भी हाथ से बनाना पड़ता था। ये कठिन परिस्थितियाँ थीं जिनमें इस नंगे-भूखे युवक ने सन् १९०४ में द्वितीय श्रेणी में मैट्रिक की परीक्षा पास की। द्वितीय श्रेणी आने के कारण उनको कालिज में भर्ती करने से इन्कार कर दिया गया। उनके जीवन-चरित्र में लेखकों ने लिखा है कि ग़रीबी और निराशा के कारण कई बार उन्होंने आत्म-हत्या करने का विचार किया था। तीन दिन की भूख मिटाने के लिए उन्हें अपनी हिसाब की किताब बेचने को मजबूर होना पड़ा। एक ज़रूरतमन्द हैडमास्टर ने उन्हें किताब बेचते हुए देखा और दया करके उन्हें अठारह रुपये महीने पर अपने स्कूल में अध्यापक बना लिया। इसने उनको प्राइवेट रूप में बी० ए० पास करने का अवसर

दिया। पन्द्रह वर्ष में वे अध्यापक से स्कूल के डिप्टी इन्स्पेक्टर के पद पर पहुँच गए।

प्रेमचन्द युवक थे। उनकी पत्नी उन्हें छोड़ गई थी। उन्हें लोगों ने दूसरी शादी के लिए मजबूर किया। वे शादी करने को राज़ी हो गए परन्तु एक ही शर्त पर, कि उनकी शादी किसी विधवा से हो। अपने इस क्रान्तिकारी विचार से उन्होंने अपने कई मित्रों और रिश्तेदारों की सहानुभूति खो दी। उन्होंने शादी में मिलने वाले उस दहेज को भी खो दिया जिससे उनकी उस समय कुछ सहायता हो सकती थी। वह विधवा लड़की, जिससे उन्होंने शादी की थी, अपने प्रथम पति को ग्यारह वर्ष की अवस्था में शादी के तीन ही महीने बाद खो चुकी थी। पीछे आने वाली श्रीमती प्रेमचन्द आठ वर्ष तक अपने वैवाहिक जीवन को अपने अनुकूल न बना सकी। मुझको लिखे गए एक पत्र में उन्होंने अपनी पत्नी के चरित्र के सम्बन्ध में बताया है—"मेरे वैवाहिक जीवन में रोमांस-जैसी कोई चीज़ नहीं थी। वह बिलकुल साधारण ढंग भी था। मेरी प्रथम पत्नी सन् १६०४ में मरी। वह एक अभागी स्त्री थी जो देखने में तनिक भी अच्छी नहीं थी और यद्यपि मैं उससे सन्तुष्ट नहीं था तथापि मैं बिना किसी प्रकार के शिकवे-शिकायत के उसे निभाता रहा, जैसा कि सभी पुराने ढंग के पति किया करते हैं। जब वह मर गई तब मैंने एक बाल-विधवा से शादी की और मैं उसके साथ अत्यन्त प्रसन्न हूँ। उसकी रुचि साहित्यिक है और वह कभी-कभी कहानियाँ भी लिखती है। वह एक निर्भीक, साहसी, दृढ़, विश्वसनीय भूल स्वीकार करने वाली और अत्यधिक प्रोत्साहन देने वाली स्त्री है। उसने असहयोग-आन्दोलन में भाग लिया और जेल गई। जो कुछ वह नहीं दे सकती उसकी आशा न करता हुआ मैं उससे प्रसन्न हूँ। वह टूट भले ही जाय, पर आप उसे झुका नहीं सकते।" आठ वर्ष के बाद उसने घर सँभालना और उन पर शासन करना आरम्भ किया। यह बाल-विधवा उस लापरवाह और चिन्ताग्रस्त पति के लिए, जो

पूर्ण रूप से साहित्यिक जीवन बिताने जा रहा था, अद्भुत संगिनी सिद्ध हुई।

प्रेमचन्द अपनी दूसरी शादी से पहले ही साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं में लिख रहे थे। 'कृष्णा' नाम का उनका साधारण-सा उपन्यास प्रकाशित हो ही चुका था। उसी प्रकार का दूसरा उपन्यास 'प्रेमा' १६०४ में छपा। इन दिनों वे उस देश-भक्ति की लहर की ओर खिंचे जा रहे थे, जो सारे देश में फैल रही थी। उन्होंने सन् १६०७ में 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' नामक कहानी लिखी, जो उच्चकोटि की देश-भक्ति की भावना से पूर्ण थी। उस कहानी का सार यह था कि संसार की सबसे अधिक मूल्यवान वस्तु रक्त की वह बूँद है, जो मातृ-भूमि की रक्षा के लिए गिरती है। इसके बाद ऐसी ही और कहानियाँ लिखी गईं, जिन्होंने पाठकों में देश-भक्ति की भावना जगाई। 'सोज़े-वतन' उनकी कहानियों का पहला संग्रह था, जिसे उन्होंने सन् १६०७ में प्रकाशित कराया। ये सब कहानियाँ उर्दू के प्रसिद्ध मासिक पत्र 'ज़माना' में छप चुकी थीं। यद्यपि विषय की दृष्टि से वे कहानियाँ क्रान्तिकारी नहीं थीं फिर भी भयभीत नौकरशाही सरकार का ध्यान उनकी ओर चला ही गया। ज़िले के कलक्टर ने उन्हें बुलाया और ऐसी कहानियाँ लिखने के लिए उनसे जवाब तलब किया, जिनसे वैधानिक सरकार के प्रति घृणा पैदा होने की सम्भावना थी। लगभग ५०० पुस्तकें कलक्टर की आज्ञा से जनता के सामने जला दी गईं और युवक-लेखक को कड़ी चेतावनी दे दी गई। कलक्टर ने चेतावनी देते हुए कहा कि यदि दूसरी सरकार होती तो उनके हाथ काट लिये गए होते और इस प्रकार उनका लिखना बन्द हो गया होता। यह बात प्रेमचन्द के मर्म पर चोट करने वाली थी, परन्तु वे असहाय थे। इस घटना ने उनके हृदय में ऐसा गहरा घाव कर दिया, जो समय पाकर भर तो गया परन्तु उसका निशान बना रहा। तब धनपतराय मर गया और बाज़ार को अपनी कहानियों से पाटने के लिए प्रेमचन्द का जन्म हुआ,

जिसका अर्थ था भारत के उज्ज्वल अतीत के प्रति प्रेम उत्पन्न करना। सन् १९१४ में उन्होंने उर्दू को छोड़कर हिन्दी में लिखना आरम्भ किया। एक पत्र में, जो उन्होंने मुझे १९३५ में लिखा था, अपने साहित्यिक जीवन की आलोचना करते हुए कहा है—"मैंने उर्दू साप्ताहिकों और फिर मासिकों में लिखना आरम्भ किया। लिखना मेरे लिए शौक की चीज़ था। मैं सरकारी नौकर था और फुरसत के समय ही लिखता था। उपन्यासों के लिए मेरे हृदय में शान्त न होने वाली भूख थी और बिना भले-बुरे के ज्ञान के जो-कुछ भी मुझे मिलता था, उसे ही मैं निगल जाता था। मेरा प्रथम लेख सन् १९०१ में छपा और प्रथम पुस्तक सन् १९०३ में। लिखने से मेरे अहं की तुष्टि के अतिरिक्त और कोई लाभ नहीं हुआ। पहले मैंने सामयिक घटनाओं पर लिखा और उसके बाद वर्तमान और अतीत के वीरों के रेखाचित्र पेश किये। सन् १९०७ में मैंने उर्दू में कहानियाँ लिखना आरम्भ किया और निरन्तर मिलने वाली सफलता से उत्साहित हुआ। १९१४ में मेरी कहानियों का अनुवाद हुआ और वे हिन्दी के पत्रों में प्रकाशित हुईं। तत्पश्चात् मैंने हिन्दी को अपनाया और 'सरस्वती' में लिखना आरम्भ किया। तदनन्तर मेरा 'सेवा सदन' निकला और मैंने नौकरी छोड़कर स्वतन्त्र रूप से साहित्यिक जीवन बिताने का निश्चय किया।"

इस बीच उन्हें घोर परिश्रम करना पड़ा, जिससे उनके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। १९१४ में उन्होंने इण्टरमिडिएट की परीक्षा पास की। परीक्षा के लिए वे प्रातःकाल पाँच बजे तक कार्य करते थे। उसके बाद वे नाश्ता करते और छः बजे से पहले ही साहित्यिक कार्य करने के लिए बैठ जाते। वे नौ बजे स्कूल जाते और दोपहर के बाद तीन बजे पैदल वापस आते। सायंकाल छः से आठ तक फिर साहित्यिक कार्य में जुट जाते। वर्षों तक यही उनका दैनिक कार्यक्रम चलता रहा। वास्तव में बिना किसी प्रकार का उचित विश्राम या अवकाश प्राप्त किये उनका जीवन निष्ठा और कठोर श्रम से पूर्ण था। एक बार उन्होंने मुझे

लिखा था कि मेरे निकट जीवन का अर्थ सदैव कार्य ही रहा है। वे कार्य करने में ही सुख का अनुभव करते थे। यद्यपि उनके जीवन में निराशा के ऐसे क्षण भी आये थे, जब उन्हें आर्थिक अभाव ने घेरा था तथापि वे अपने भाग्य से सन्तुष्ट ही रहे थे। उन्होंने अनुभव किया कि वे जितना कुछ चाहते थे उससे अधिक उन्हें मिला था। प्रकृति अपना कार्य भिन्न प्रकार से करती है। प्रेमचन्द को भी उसने नहीं छोड़ा। उनको पेचिश ने घेर लिया। यह रोग उन्हें अपने माता-पिता से लगा था और इसी के कारण वे ५६ वर्ष की अवस्था में स्वर्ग-वासी हो गए।

सन् १६२० में उनके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। महात्मा गांधी, जो कि भारतीय राजनीति के संचालक थे, उत्तर प्रदेश का दौरा करते हुए गोरखपुर आये और वहाँ एक भाषण दिया। प्रेमचन्द और उनकी पत्नी ने उनका भाषण सुना और वे गांधीजी के भक्त हो गए। उनके जीवन में एक नया ही परिवर्तन हो गया। यहाँ से उनका जीवन नई दिशा की ओर मुड़ा। प्रेचन्द ने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देने का निश्चय कर लिया। दूसरे ही दिन उन्होंने अपने स्कूल के हैडमास्टर के हाथों में अपना त्याग-पत्र दे दिया। उस समय उन्हें १७५) प्रति मास वेतन मिल रहा था, जो काफ़ी अच्छा था। बिना स्थायी आमदनी के अपनी कलम के द्वारा उन्हें दो बच्चों को पालना था। उनकी पत्नी की सम्मति में उनका स्वास्थ्य खराब ही नहीं था बल्कि सँभाल कर रखने योग्य भी था। इतना होते हुए भी उनका निश्चय अटल ही था। उन्होंने सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया और असहयोगियों की बढ़ती हुई भीड़ में शामिल हो गए। उन्होंने पूरी तरह अपने-आपको राष्ट्रीयता और साहित्य को सौंप दिया। अपनी जीविका के लिए उन्होंने चरखे बनाकर बेचने के साधारण काम से लेकर सिनेमा-कम्पनी के लिए कहानी लिखने तक का कार्य किया। प्रेस का चलाना तो उनके लिए जीवन-भर परेशानी पैदा करता रहा। पत्रकारिता ने उन्हें भारी आर्थिक कठिनाइयों

में फँसा दिया। उन्होंने सदैव यह स्वीकार किया कि आर्थिक दृष्टि से वे असफल रहे और कभी ऐसा नहीं हुआ कि उनकी जरूरतें पूरी हो गई हों। श्रीमती प्रेमचन्द ने ऐसे अनेक प्रसंगों का उल्लेख किया है, जिनसे इस बात का पता चलता है कि उन्हें निरन्तर धन का अभाव रहा। यद्यपि वे पत्रकार होने योग्य नहीं थे तथापि उनकी परिस्थितियों ने उन्हें पत्रकार होने को बाध्य किया। उन्होंने अपने साहित्य की लगभग सभी कमाई इस व्यापार में खो दी, जो कोई अधिक भी नहीं थी। वह गरीबी में ही मर गए।

सच तो यह है कि उन्हें दो बातों का व्यसन था—एक लापरवाही की हँसी और दूसरी ग़रीबी। एक बार उन्होंने लिखा था कि वे कभी इस बात की कल्पना ही नहीं कर सकते थे कि किसी दिन वे धनी पुरुष बनेंगे। जैसे ही वह किसी धनी व्यक्ति को देखते थे, उनको लगता था जैसे उनकी समस्त बुद्धिमत्ता हवा हो गई है। लेकिन वे अपने गाँव के ग़रीब किसानों से मिलने का अवसर नहीं छोड़ते थे। वे हृदय से उनसे मिलने का यत्न करते थे और उनकी कठिनाइयों से परिचय प्राप्त करते थे। वे इस बात से प्रसन्न थे कि उनका भाग्य ग़रीबों के साथ बँधा है। उन्होंने लेखकों को चेतावनी दी कि जो धन की खोज में हैं उन्हें सरस्वती के मन्दिर में स्थान नहीं मिल सकता। वे शायद ही कभी धन और यश के लोभ में आये हों। एक बार परिस्थितियों से बाध्य होकर उन्होंने सीनेरियो-लेखक के रूप में अच्छे वेतन पर एक सिनेमा-कम्पनी में काम करना आरम्भ किया था, लेकिन शीघ्र ही वे उससे ऊब गए। कला को व्यवसाय का रूप देने से उन्हें घृणा थी। डायरेक्टर, जो कि सर्वेसर्वा था, मनुष्य की बुरी प्रवृत्तियों को उभारकर रुपया बटोरने में ही सफलता समझता था। डायरेक्टर चित्र को लोकप्रिय बनाने के लिए नृत्य, चुम्बन, मार-पीट, स्त्रियों पर आक्रमण, बलात्कार, रक्त-पात और हत्या इत्यादि कुछ गिने-चुने सस्ते उपायों को काम में लाता था। उन पर सिनेमा-उद्योग का जो प्रभाव पड़ा था, उसे उन्होंने मुझे निम्न लिखित शब्दों में लिखा था—"एक साहि-

त्यिक व्यक्ति के लिए सिनेमा में कोई स्थान नहीं है। मैं इस लाइन में इसलिए आया कि मुझे इसमें आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र होने के कुछ अवसर दिखाई दिए। लेकिन अब देखता हूँ कि मैं भ्रम में था और अब फिर साहित्य में लौट रहा हूँ। वास्तव में जिस साहित्यिक कार्य को मैं अपने जीवन का उद्देश्य समझता हूँ उसे मैंने कभी बन्द नहीं किया। सिनेमा मेरे लिए ऐसा ही है जैसी कि मेरे लिए वकालत हुई होती, पर अन्तर यह है कि वह इससे अच्छी चीज़ होती।" प्रेमचन्द ने ऊबकर सिनेमा-जगत् से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया और अपने जीवन के शेष दो वर्षों को साहित्य-सेवा में लगाने के लिए घर लौट आए। 'गोदान' के प्रकाशन ने सिद्ध कर दिया कि उनका लौटना बहुत ही उपयुक्त हुआ। 'गोदान' साहित्य को उनका ऐसा अन्तिम उपहार है जो अपने युग के किसी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है।

प्रेमचन्द ने स्वयं मृत्यु-पर्यन्त काम किया। जीविकोपार्जन कठिन कार्य था। अपने परिवार का पालन करना और दो-दो पत्रों का चलाना इतना आसान नहीं था। वे उनके रक्त की अन्तिम बूँद तक के ग्राहक थे। उनकी पत्नी उनसे आराम करने के लिए कहती थीं परन्तु वे समझते थे कि बिना कठिन परिश्रम के जीवन निष्क्रिय और निरर्थक हो जायगा। वे मधुमक्खी की भाँति जीवन-भर व्यस्त रहे। उनका स्वास्थ्य नाजुक था, उनका शरीर दुबला-पतला और उनका भोजन पौष्टिक तत्त्वों से हीन था। प्रकृति की बार-बार की चेतावनियों के बावजूद वे घोर श्रम में डूबे रहे। वे सोचते थे कि कठिन परिश्रम के पश्चात् वे अपने बुढ़ापे के दिन गाँव में बिताएँगे, जहाँ उन्हें निर्धन और अशिक्षित ग्रामीणों की सेवा के लिए पर्याप्त अवसर मिलेगा। यह उनके जीवन का स्वप्न था। उनके पुत्र तब तक इतने योग्य हो जायँगे कि प्रेस की ज़िम्मेदारी सँभाल सकेंगे। उनकी दूरंदेश पत्नी उनसे वृद्धावस्था के लिए शक्ति संचित रखने का आग्रह करती थीं, लेकिन वे काम की वेदी पर अपने शरीर की बलि देने के लिए तुले हुए थे। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक संघर्ष और त्याग के जीवन को अप-

नाया। उन्होंने महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा ग्रहण की थी। ईसा को शूली पर चढ़ाया गया, मुहम्मद को कष्ट दिया गया, राम का निर्वासन हुआ, बुद्ध भी इस संकट से अपने को न बचा सके और गांधी भी गोली खा गए। अन्तिम विजय सत्य की ही होगी। प्रेमचन्द संघर्ष और विरोध से भयभीत नहीं होते थे। यही उनके आध्यात्मिक जीवन का आधार था। वास्तव में वे अपने भीतर महानता का अनुभव करते थे।

प्रेमचन्द अध्ययनशील थे। वे पुस्तकों के ऐसे पाठक थे, जो पुस्तकों के लिए भूखे रहते हैं और जो-कुछ भी मिलता है, उसे ही पढ़ डालते हैं। जो कोई भी पुस्तक उनके हाथ में आती थी, उस पर वे एक नजर ज़रूर डाल लेते थे। उन पुस्तकों में सस्ती जासूसी कथाओं, रोमांचक और साहसी कहानियों से लेकर स्कॉट, थैकरे, डिकैंस, हार्डी, ह्यूगो, टैगोर, टाल्स्टाय और रोमेनरोलाँ-जैसे लेखकों की गम्भीर कृतियाँ तक होती थीं। उनका अध्ययन विस्तृत था और उन्होंने जीवन की सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर गम्भीरता से विचार किया था। इस सच्चे महापुरुष के जीवन-चरित्र में श्रीमती प्रेमचन्द ने इस बात का उल्लेख किया है कि दैवी विधान में उनका विश्वास नहीं था। उनके लिए ईश्वर मनुष्य की कल्पना का खेल था। पहले वे किसी सर्वोच्च शक्ति में विश्वास रखते थे लेकिन यह उनके लिए संस्कारों की देन थी। यह उनके चिन्तन का फल नहीं था। वह बहुधा कहा करते थे कि विश्व के मूल में स्थित शक्ति को जैसे चींटियों, मक्खियों या मच्छरों के जीवन से कुछ लेना-देना नहीं है वैसे ही मनुष्य के कार्यों से भी उसका कोई सरोकार नहीं। अन्धविश्वास मानव की क्षमता को नष्ट कर देता है। जीवन उस व्यक्ति का है, जो उसे बदल सकता है। महात्मा गांधी ने उस दैवी सत्ता पर इसलिए ज़ोर दिया कि जनता पूरी तरह जाग्रत नहीं थी और उन्होंने उसे नवीन चेतना देने के लिए इस प्रतीक का उपयोग किया। वैसे देखा जाय तो धर्म का उपयोग ग़रीब और अपढ़ जनता के शोषण के लिए ही किया गया है। उसी प्रकार धार्मिक अन्ध-

विश्वासों में अन्ध श्रद्धा रखने वाली नारी का भी मनुष्य द्वारा शोषण हुआ है। महात्मा गांधी का उनके ऊपर अत्यधिक प्रभाव पड़ा था। उन्होंने उनसे मिलने की कई बार कोशिश की। सबसे पहले वे १९२८ में मिलने गये, पर निराश होकर लौट आए। पीछे महात्मा गांधी ने उन्हें भारत-राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर विचार-विनिमय करने के लिए इन्दौर बुलाया। वे सन् १९३५ में उनके साथ चार दिन तक रहे और उनके आकर्षक व्यक्तित्व से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उनके नेतृत्व में उनका विश्वास और भी गहरा और अडिग हो गया। प्रेमचन्द इस भेंट से बहुत पहले उन्हें अपना बना चुके थे। उनको 'प्रेमाश्रम' (१९२२) की प्रेरणा उनकी विचार-धारा और व्यक्तित्व से ही मिली थी। महात्मा जी किसानों और मज़दूरों की भलाई के लिए संघर्ष कर रहे थे। वे उनको सुखी बनाने के लिए जन-आन्दोलन की तैयारी कर रहे थे। प्रेमचन्द ने अपनी पत्नी से कहा कि साहित्य द्वारा वे भी ग़रीबों का पक्ष ले रहे हैं। वे उनमें आशा और उत्साह भर रहे थे। जैसे उस महान् नेता के लिए हिन्दू-मुसलिम-एकता विश्वास की वस्तु थी, वैसे ही प्रेमचन्द भी हिन्दी और उर्दू के मेल से एक सम्मिलित भाषा का निर्माण करके उस उद्देश्य को पूरा करना चाहते थे। इसीलिए हिन्दुस्तानी उनके लिए भावाभिव्यक्ति का साधन हो गई थी। वे धार्मिक कठमुल्लापन के सभी रूपों से घृणा करते थे। विभिन्न धर्मानुयायी जातियों के बीच होने वाले अन्तर्जातीय विवाहों का उन्होंने कभी विरोध नहीं किया। वे स्त्री-पुरुष की समानता में विश्वास रखते थे। मनुष्य द्वारा नारी पर अत्याचार होते देखकर वे अत्यन्त क्रुद्ध हो उठते थे। ग़रीब स्त्री के लिए बिना किसी प्रकार की उचित व्यवस्था हुए वे तलाक के पक्ष में नहीं थे। अच्छी-से-अच्छी शादी भी एक प्रकार से समझौता और समर्पण ही होती है। केवल तथाकथित उच्च वर्ग में ही तलाक की समस्या ने गम्भीर रूप धारण कर लिया था अन्यथा सर्वहारा वर्ग में तो यह सामान्य बात थी। प्रेमचन्द इस बात को मानते थे कि कुछ मामलों में तलाक आवश्यक

हो जाता है लेकिन यह एक ऐसी माँग थी जो अस्वस्थ व्यक्तिवाद द्वारा उठाई गई थी। समानता के आधार पर समाज में इसके लिए कोई स्थान नहीं था। अतीत की जर्जर परम्पराओं में उनका अधिक विश्वास नहीं था। उनका कहना था कि समय सदैव गतिशील है। सामाजिक नियमों में भी परिवर्तन अनिवार्य है। नवीन परिस्थिति के अनुकूल उनको भी बदलना चाहिए। जीवन के निकट सम्पर्क में आकर ही उन्होंने ये सम्मतियाँ और दृष्टिकोण प्रस्तुत किये थे। इनमें तोता-रटन्त की बात नहीं थी, वल्कि उनके गहरे अनुभव के परिणाम थे।

रूस की नई सभ्यता उनको बहुत अच्छी लगी। उन्होंने कहा कि इस देश में मनुष्य के द्वारा मनुष्य का शोषण नहीं होता। उनको आशा थी कि भारत भी जीवन के इस आदर्श को प्राप्त करेगा। एक बार उन्होंने अपनी पत्नी से कहा था कि यदि क्रांति हुई तो वे ग़रीबों के साथ मिल जायँगे। उनकी लेखनी हथौड़े या हँसिये-जैसी थी। उसने भी धरती पर स्वर्ग उतारने का वैसा ही काम किया। न वहाँ भय होगा और न अभाव होंगे। वह मानव-जीवन का रूप ही बदल देगी। प्रेमचन्द नई समाज-व्यवस्था के लिए क्रान्ति की अपेक्षा सामाजिक विकास के मार्ग को पसन्द करते थे। उनका आदर्श समाज वह था, जिसमें सबको समान अवसर मिले। इस स्थिति तक विकास के मार्ग द्वारा ही पहुँचा जा सकता था। जब तक मनुष्य व्यक्तिगत रूप से उन्नत न होगा, कोई समाज-व्यवस्था समृद्ध नहीं हो सकती। कभी-कभी क्रान्ति जनता को तानाशाही के उस निकृष्ट रूप की ओर ले जाती है, जिसमें सभी प्रकार के व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य का निषेध होता है। प्रेमचन्द निश्चय ही एक सुधारक थे, क्रान्तिकारी नहीं। उन्होंने मुझे लिखा था कि वे कभी भी क्रियात्मक रूप में कार्य करने वाले व्यक्ति नहीं रहे। उनकी पत्नी सन् १९३०-३१ के आन्दोलन में गिरफ़्तार होकर उनसे आगे निकल गईं। उन्होंने अपने नगर की स्त्रियों को नमक-कानून तोड़ने के लिए संगठित किया और ११ मार्च सन् १९३१ को गिरफ़्तार हो गईं।

प्रेमचन्द परिवार की देख-भाल के लिए रह गए, जो उनके लिए बन्दी होने से कहीं अधिक बुरा था। उनकी अनुपस्थिति में उन्होंने एक कैदी की जिन्दगी शुरू की। सामाजिक बुराइयों के दूर करने में वे पहले से ही अपने को असहाय अनुभव करते थे। वे तो केवल साहित्य के माध्यम द्वारा उन बुराइयों के विरुद्ध जनता की चेतना को उत्तेजित कर सकते थे। उनके लिए यह बड़ा भारी काम था। ऐसी कठिन सामाजिक समस्याओं का समाधान तो केवल स्वतन्त्र भारत में ही हो सकता था। एक बार जब वेश्याएँ म्युनिसिपैलिटी की आज्ञा से शहर से हटाकर बाहर की जा रही थीं तो वे और उनकी पत्नी अत्यधिक बेचैन हो गए थे। उनके भाग्य पर उनको बड़ा दुःख हुआ था। उन्होंने कहा था कि इस समस्या का मुकाबला एक ऐसी महान् आत्मा ही कर सकती है, जिसका कि अभी तक जन्म नहीं हुआ। वे ऐसे नहीं थे; और इसीलिए उन्होंने व्यंग्य करते हुए उनसे सृष्टि के दैवी विधान में विश्वास रखने के लिए कहा। इन अभागी स्त्रियों की मुक्ति ईश्वर द्वारा ही होगी। वास्तव में उनका विश्वास था कि सामाजिक नियम मनुष्य ने बनाये हैं और वह इनमें संशोधन भी कर सकता है। उसमें ईश्वर का हस्तक्षेप न तो अनिवार्य है और न आवश्यक। अपने बौद्धिक निश्चय के कारण वे नास्तिक हो गए। एक बार उन्होंने कहा था कि इस देश की स्थिति को कमालपाशा-जैसा तानाशाही ही सँभाल सकता है। जनता में प्रजातान्त्रिक भावना इतनी कमज़ोर थी कि उनके समान उच्च प्रभावशाली व्यक्ति ही उन्हें कुछ करने या मरने की प्रेरणा दे सकता था।

प्रेमचन्द ने भय अथवा अपने गिरते हुए स्वास्थ्य के कारण अपने विचारों और आदर्शों को प्रकट करने में कभी आगा-पीछा नहीं सोचा। संक्रामक रोग ने उनकी शक्ति को खा लिया था; लेकिन उनकी कार्य करने की इच्छा उनमें क्षीण शरीर से अधिक शक्तिशाली सिद्ध हुई। वह सदैव एक योद्धा रहे थे और अभी उन्हें मृत्यु से एक युद्ध और करना था। उनकी मृत्यु से कुछ ही सप्ताह पहले मैक्सिम

गोर्की, जिसे वे बराबर प्यार करते थे और जिसके साहित्य की प्रशंसा करते थे, सन् १९३६ में स्वर्गवासी हो गया। उनके कार्यालय में उसकी शोक-सभा होने वाली थी। वे रोग-शय्या पर पड़े थे। उनकी पत्नी ने उनसे मना किया कि वे इस सभा में भाग न लें। आखिर गोर्की कोई भारतीय लेखक नहीं था, लेकिन उनके लिए साहित्य के मानचित्र में भौगोलिक दीवारों और सीमाओं का अस्तित्व नहीं था। गोर्की जनता का लेखक था, ऐसे ही वे भी थे। उन्होंने अपना अन्तिम भाषण लिखा, जिसमें उस महान् लेखक की स्मृति में श्रद्धाञ्जलि समर्पित की गई थी। उस अद्भुत व्यक्ति के नामोल्लेख पर ही प्रेमचन्द की आँखें भर आईं, जिसके समान वे अपने जीवन में ख्याति प्राप्त न कर सके। मैक्सिम गोर्की की मृत्यु के दो महीने बाद ही यह महान् भारतीय लेखक भी ८ अक्तूबर १९३६ को सुख की नींद सो गया। मरने के समय उनकी आयु मुश्किल से ५६ साल की थी, परन्तु जिनकी सेवा उन्होंने की उनके हृदय में वे अब भी जीवित हैं और उनकी गिनती लाखों तक हो सकती है। उनकी सादगी और मानवता कहावत बनकर रह गई है। उन्होंने निरन्तर मनुष्य के भीतर सत्यं, शिवं, सुन्दरं की खोज की। जीवन में जब कभी ये गुण उन्हें मिले, वे उल्लसित हो गए। वे जीवन के दर्शक-भर ही नहीं थे, बल्कि उसके ऐसे स्रष्टा भी थे जो धूल और मिट्टी से सुन्दर मूर्तियाँ बनाकर उसे आकार प्रदान करता है। उनकी ढीली-ढाली पोशाक, बे-तरतीब मूँछें, बिखरे और रूखे बाल, बिना फीते के जूते, बच्चों-जैसा कुतूहल, निर्दोष हँसी के ठहाके, और सबसे अधिक उनका सरल व्यवहार—मिलने वालों पर गहरी छाप छोड़ते थे। वे अपने भीतर घायल हृदय छिपाये हुए थे, जो मनुष्य की पीड़ा को देखते ही वह निकलता था। उन्होंने उस पीड़ा को दूर करने के लिए जनता में उसके विरुद्ध सामाजिक चेतना जाग्रत करने की चेष्टा की। अपने जीवन और कला में वे मानवतावादी बने रहे।

: ३ :

मध्यवर्ग

प्रेमचन्द वास्तव में एक प्रगतिशील लेखक थे। वह अपने युग के साथ-साथ चले और कभी-कभी उसके साथ दौड़े भी। मध्यवर्ग जीवन के प्राचीन और नवीन आदर्शों के संघर्ष के बीच से गुज़र रहा था। पूँजीवाद या पाश्चात्य सभ्यता के आघात ने जीवन के मध्य-कालीन और आधुनिक दृष्टिकोण के बीच एक गहरी खाई खोद दी थी। प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कृतियों का सम्बन्ध विशेष रूप से मध्य-वर्गीय समाज के इसी संघर्ष से है। वह सुधार करने के लिए कटिबद्ध थे। १९०५, १९२०-२२ और १९३०-३२ के राजनीतिक आन्दोलनों ने उनके कोमल मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डाला। आरम्भ का सुधार-वादी आन्दोलन, उदारतावाद से आरम्भ होकर असहयोग में समाप्त होने वाला राजनीतिक संघर्ष और सविनय अवज्ञा-भंग-आन्दोलन और अन्त में समाजवाद तथा साम्यवाद की विचार धारा—ये प्रमुख प्रभाव कहे जा सकते हैं, जिन्होंने उनके मस्तिष्क का निर्माण किया और उनकी कला को रूप दिया। सामाजिक मामलों में मध्यवर्ग ने व्यक्ति-गत स्वतन्त्रता का अधिक उपयोग आरम्भ किया। नवीन व्यवस्था ने उस ग्रामीण जनता के जीवन पर गहरा और व्यापक प्रभाव डाला, जो जाति-पाँति के बन्धनों में जकड़ी हुई थी। जैसे-जैसे वे शिक्षित होते गए और अधिक अच्छी आर्थिक सुविधाएँ प्राप्त करते गए, वैसे-वैसे वे नगरों में बसने लगे, जहाँ नये-नये कार्य उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। गाँव में रहने वाले अपने जाति-भाइयों से उनका सम्बन्ध शिथिल

हो गया। उपजातियाँ एक-दूसरे में मिलने लगीं। अन्तर्जातीय विवाह भी होने लगे, यद्यपि उनका प्रचलन अधिक नहीं था। बड़ी उम्र में शादियाँ होने लगीं। परस्पर खान-पान के बन्धन ढीले हुए। पुराने देवी-देवताओं की मान्यता कम हुई। एक नये पवित्रतावादी दर्शन का विकास हुआ और राष्ट्रीयता और देश-प्रेम ने धर्म का रूप ले लिया।

मध्यवर्ग की समस्त शक्ति उद्योगशीलता पैदा करने और उसे पुष्ट करने में लग गई। प्रतिस्पर्द्धा के बोझ ने उसके अभिमान को चूर-चूर कर दिया। कर्म ही उपासना की वस्तु बन गया। कर्म पर अधिकाधिक ज़ोर दिया जाने लगा। आर्यसमाज ने इसका उपदेश दिया। महात्मा गांधी ने जीवन में कर्म के महत्त्व को और भी बढ़ा दिया। यह मध्यवर्ग उन जायदाद रखने वाले सज्जनों से मतभेद रखता था, जो अपने किराये की आमदनी के बल पर भविष्य की सभी चिन्ताओं से मुक्त थे। इसलिए मध्यवर्ग इच्छापूर्वक और उत्साह के साथ नैतिकता को अपना रहा था। नये वर्ग का यह विश्वास था कि नैतिक होना लाभदायक है। उसके सदस्य तर्क और विज्ञान में भी विश्वास रखते थे। उपयोगितावाद के सिद्धान्त ने जनमत, राजनीति और जनता के राष्ट्रीय जीवन पर और भी व्यापक प्रभाव डाला। बुद्धिवादी और आस्तिक दृष्टिकोणों ने विज्ञान और परम्परागत धार्मिकता के बीच की खाई को और भी चौड़ा कर दिया। इस परीक्षा में अनेकों का विश्वास हिल गया; लेकिन एक प्रकार का समझौता, जो कि मध्यवर्गीय मनोविज्ञान की एक विशेषता है, बराबर होता रहा। इस नये दृष्टिकोण के परिणामस्वरूप साहित्य तथा विशेष रूप से उपन्यास और कहानियों के क्षेत्र में यथार्थवाद की प्रवृत्ति ने प्रमुखता प्राप्त कर ली।

प्रेमचन्द ने, जो कि इस नये सामाजिक दल के व्यक्ति थे, नैतिकता के एक विशेष स्तर की स्थापना की और सामाजिक ध्येय और सामाजिक आलोचना के प्रकाशन के लिए उपन्यास का उपयोग किया। सामाजिक

उपन्यास की कला के वह अग्रदूत थे। वह रोचक कथा में सामाजिकता और मनोरंजन का ऐसा मिश्रण करते थे कि वह पाठकों का ध्यान खींच लेती थी। उन्होंने स्वयं अपने पाठक पैदा किये। पाप के ऊपर पुण्य और असत्य के ऊपर सत्य की विजय में उनका दृढ़ विश्वास था। यह सच था कि उन्हें पुण्य की अपेक्षा पाप अधिक शक्तिशाली दिखाई देता था; लेकिन फिर भी वे कहा करते थे कि जीवन की असत् और निन्दनीय शक्तियों पर अन्तिम विजय सत् की ही होगी। जैसे ही उन्हें सत् पर असत् की विजय की सम्भावना दिखाई देती थी वे उनमें समझौता, जो कि मध्यवर्ग की विचार-धारा के लिए आवश्यक है, करा देते थे। १९३१ का गांधी-इरविन-पैक्ट उनके जीवन-दर्शन या दृष्टिकोण की राजनीतिक आधार-शिला थी। यथार्थवाद और आदर्शवाद का समन्वय, समाजवाद और पूँजीवाद का समन्वय तथा क्रान्ति और रूढ़िवादिता का समन्वय—वे मौलिक तत्त्व थे, जिनसे उनका मस्तिष्क और कला अनुप्राणित थे। वे उपन्यास को जीवन का प्रतिबिम्ब और उसकी आलोचना समझते थे। वे जासूसी तथा प्रेम-कथाओं की विद्यमानता और लोकप्रियता पर खेद प्रकट किया करते थे।

आरम्भ में कथा-साहित्य की प्रवृत्ति विशेष रूप से प्रेम-चित्रण की ओर थी। देवकीनन्दन खत्री, किशोरीलाल गोस्वामी और गहमरी-जैसे लेखकों ने लगातार प्रेम-प्रधान उपन्यास लिखे। उन सबने जादू और आकर्षण, प्रेम और विलास, उत्साह और साहस से भरे जगत् की सृष्टि की। उन्होंने पाठकों के कौतूहल और अद्भुत प्यास को शान्त किया। उनके उपन्यासों के ताले पेचीदा, दरवाजे जादू-भरे और कमरे रहस्यमय हैं। थोड़े-से मानवीय स्पर्श के साथ चमत्कार और प्रेम की सृष्टि करने के लिए सब तत्त्वों का समन्वय कर दिया गया है। ऐसे प्रेम-प्रधान उपन्यासों में चरित्र-चित्रण केवल नाम का रहा है, उनमें तो घटना और कथावस्तु की ही प्रधानता रहती है। प्रेमचन्द ने ऐसे उपन्यासों का विरोध किया। उन्होंने बताया कि उपन्यास का लक्ष्य केवल लोगों

का मनोरंजन ही नहीं वरन् उनका सुधार करना भी है। उपन्यास का उद्देश्य मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और सामाजिक वातावरण से उसका सम्बन्ध स्पष्ट करना है। कथावस्तु को भी उन्होंने उचित महत्त्व दिया, लेकिन उन्होंने कहा कि उसे सामाजिक ध्येय के अधीन होना चाहिए। प्रत्येक प्रसंग या घटना जीवन से मिलती-जुलती होनी चाहिए। वह पहले उपन्यासकार थे, जिन्होंने स्वयं चरित्र-प्रधान उपन्यास लिखे और दूसरों से भी वैसे ही उपन्यास लिखने के लिए कहा।

'सेवा सदन' (१९१४) उनका पहला उपन्यास है, जिसमें अनेक चरित्रों का विकसित स्वरूप है और जिसमें मध्यवर्ग की समस्याओं पर सुन्दरता से प्रकाश डाला गया है। उसमें एक ऐसी लड़की की कष्ट-कथा है, जिसकी शादी एक क्रूर, संकीर्ण हृदय रखने वाले, कृपण और ईर्ष्यालु युवक से हुई थी। वह उसे एक रात को देर से आने के साधारण-से अपराध पर घर से निकाल देता है। एक छोटी नाव तूफानी समुद्र में बहने के लिए छोड़ दी जाती है। एक परित्यक्ता लड़की के लिए हिन्दू-समाज में कोई स्थान नहीं है। सुमन वेश्या होने को विवश हो जाती है। समस्त पात्र और घटनाएँ इसी समस्या के आस-पास केन्द्रित हैं। सुमन उपन्यास का केन्द्र है। उसका पिता एक क्लर्क था और अपनी लड़की की शादी करने के लिए रिश्वत लेने को बाध्य हुआ था। वह पकड़ा जाता है और जेल भेज दिया जाता है। उसके न रहने पर माता और कोई मार्ग न देखकर एक १५) प्रति मास कमाने वाले वृद्ध से उसकी शादी कर देती है। सुमन अपनी शादी से असन्तुष्ट थी। उसे पता चल गया कि उसका पति अत्यन्त गरीब है और आराम की ज़िन्दगी बिताने के लिए जो उचित इच्छाएँ हैं उनकी पूर्ति नहीं कर सकता। उसके पड़ोस में रहने वाली वेश्या भोली उसकी सुख से ज़िन्दगी बिताने की इच्छा को और तीव्र बना देती है। उसका पति गजाधर संकीर्ण हृदय रखने वाला और ईर्ष्यालु व्यक्ति था। वह इस बात को नहीं सह सकता था कि वह स्वतन्त्रतापूर्वक अपने से अधिक सम्पन्न किसी मित्र के यहाँ आती-जाती

रहे। एक बार वह रात को संगीत और नृत्य के उस समारोह से देर करके लौटती है, जो एक म्युनिसिपल सदस्य के घर पर आयोजित था। उसी बीच गजाधर ने उसे अपने घर से निकालने का निश्चय कर लिया। वह इस जंगली दुनिया में शरण लेने के लिए छोड़ दी गई। वह एक म्युनिसिपल सदस्य के घर जाकर ठहरी, लेकिन चुनाव के समय वह एक परित्यक्ता को अपने घर में रखकर अपनी प्रतिष्ठा खोने के लिए तैयार नहीं था। सुमन भोली के साथ रहने के लिए विवश हुई। उसने उसका स्वागत किया। गजाधर यह सुनकर साधू हो गया। वह इस अपमान को नहीं सह सका। उपन्यास में समाज-सुधारक विट्ठलदास, जिसने सुमन के पति को उसे घर से निकालने के लिए उकसाया था, सुमन के सुधार करने की सोचने लगता है। पद्मसिंह, जो कि समाज का स्तम्भ है, उसके नैतिक पतन के लिए अपने को ज़िम्मेदार समझता है और संताप करता है। इस घृणित मार्ग पर चलने के लिए सुमन को बाध्य किया गया था। शेष कथा मध्य वर्ग के उन व्यक्तियों के कुकर्म और पाखण्ड पर प्रकाश डालती है, जो अपने को सज्जन और समाज-सुधारक समझते हैं। सुमन की वहन को भी उसके कारण कष्ट उठाना पड़ता है। कृष्णचन्द्र जेल से छूटकर आत्महत्या कर लेता है। सदनसिंह उसकी वहन से शादी कर लेता है। अन्त में ऐसी अभागी स्त्रियों को शरण देने के लिए एक आश्रम की स्थापना की जाती है।

कहानी दो सूत्रों में विभाजित हो जाती है। सुमन-गजाधर की कथा वड़ी है और शान्ता-सदन की छोटी। पहली का अन्त 'सेवासदन' है और दूसरी का परिणाम शादी है। दोनों कथा-सूत्रों में सामाजिक समस्या और सामाजिक लक्ष्य को केन्द्र वनाया गया है। म्युनिसिपैलिटी द्वारा एक प्रस्ताव पास किया जाता है, जिसमें वेश्याओं को शहर से वाहर निकालने, उनको पार्कों में जाने से रोकने, जिस किसी उत्सव में वे जनता के मनोरंजन के लिए जायँ उस पर भारी कर लगाने और उनको इस बात की छूट देने का निश्चय किया गया था कि या तो वे

नौ महीने के भीतर शादी कर लें या अपनी जीविका कमाने के लिए कोई दस्तकारी सीख लें। इस स्थल पर प्रस्ताव पर विचार करते हुए प्रेमचन्द एक सुधारक के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे पाप से घृणा करते हैं, पापी से नहीं, जो कि सुधारा जा सकता है। वे प्रत्यक्ष रूप से समाज-सुधार की भावना से अनुप्राणित दिखाई देते हैं। वे अभागी स्त्रियों के लिए सहानुभूति उत्पन्न करके, नगर के बाहर उनके रहने की व्यवस्था करके और ऐसी संतापग्रस्त आत्माओं के लिए आश्रम की व्यवस्था करके, जो कि पवित्र और स्वस्थ जीवन बिताना चाहती हैं, वेश्या-वृत्ति की समस्या का हल खोजने का प्रयत्न करते हैं। नगरों में मध्य वर्ग की जनता के जीवन को जो सामाजिक बुराई खाए जा रही है, उसकी ऊपरी रोकथाम करने के लिए उनका सुधारक यहाँ प्रकट होता है। उनके वर्ग की विचारधारा उनके मार्ग में बाधक होती है और उन्हें गहराई में जाकर उन सामाजिक और आर्थिक कारणों को नहीं खोजने देती, जो इस समस्या को उत्पन्न करते हैं। प्रेमचन्द इन बेबसों को बचाने के लिए बेचैन हैं, अन्यथा जो उपचार वह बताते हैं वह वेश्या-वृत्ति की युग-युग से चली आती हुई समस्या के मूल पर चोट नहीं करता। वे इस सामाजिक समस्या की ओर अपने वर्ग का ध्यान खींचने में सफल हुए हैं। समाज-सेवा के आदर्श पर आवश्यक बल दिया गया है। यह जीवन का चरम लक्ष्य है। जीवन के इस आदर्श का प्रतिनिधित्व करने वाला गजानन्द कहता है कि ज्ञान भक्ति और सेवा विभिन्न युगों में मुक्ति के अलग-अलग पथ रहे हैं। आधुनिक युग में मुक्ति की प्राप्ति पीड़ितों की सेवा से ही हो सकती है। 'सेवासदन' इस सामाजिक आदर्श का साकार रूप है।

उपन्यास के सभी प्रमुख पात्र मध्य वर्ग के हैं और उनका चरित्र-चित्रण जीवन के सुधारवादी दृष्टिकोण से किया गया है। लड़की के पिता कृष्णचन्द्र में इस वर्ग के सब गुण और अवगुण विद्यमान हैं। वह एक भोले हृदय का व्यक्ति है जो कठिन आर्थिक परिस्थितियों के कारण

रिशवत लेता है, लेकिन वह यह नहीं जानता कि उसे पचाया कैसे जाय। वह पकड़ा जाता है, गिरफ्तार होता है और पाँच वर्ष के लिए जेल भेज दिया जाता है। इस काल में उसमें जो परिवर्तन होता है वह और भी बुरा है। उसका शेष जीवन वेदना, शोक, संताप और प्रायश्चित में बीतता है। उसका मन पूरी तरह से भरा नहीं है। उसका अन्त आत्म-हत्या से होता है। अपने उपन्यास के अनावश्यक पात्र को हटाने का लेखक के पास यह सुगम उपाय है। उपन्यास की नायिका सुमन एक उल्लासपूर्ण बालिका है। उपन्यास उसके चरित्र के यथार्थवादी चित्रण से आरम्भ होता है, लेकिन उसका अन्त आदर्शवादी विचारधारा में होता है। भले ही इस आदर्शवाद से उसका चरित्र निर्जीव हो गया हो, परन्तु इतना मानना पड़ेगा कि उसके जीवन की रक्षा इसी आदर्शवाद ने की। प्रेमचन्द ने बताया है कि कैसे एक कमज़ोर मस्तिष्क का व्यक्ति अपनी परिस्थितियों का शिकार हो जाता है। सुमन का पालन-पोषण विलास और सुख में हुआ था; वह आनन्दमय जीवन की अभ्यस्त थी। वह कुछ-कुछ अभिमानी और अहंवादी भी थी। वह वैसी ही प्रवृत्ति रखने वाली स्त्रियों से भी घिरी हुई थी। उसके घर के सामने रहने वाली भोली ने उसके मन को लुभा लिया। लड़की के पास भड़कीले कपड़े थे, जिनको वह प्रतिदिन बदला करती थी। पहले तो सुमन उससे घृणा करती थी लेकिन पीछे उसे पता चला कि गृहस्थी स्त्रियों की अपेक्षा वेश्याओं का अधिक आदर है। इन सब बातों ने उसके मन को बदल दिया और वह इस स्त्री की ओर उन्मुख हो गई, जो शहर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्तियों के आकर्षण का विषय थी। प्रेमचन्द ने उसके हृदय के द्वन्द्व और उसके मस्तिष्क की हलचल का चित्रण नहीं किया है। ऐसा इसलिए हुआ है कि वे चरित्र-चित्रण से अधिक सामाजिक समस्याओं में अभिरुचि रखते हैं। कथा के मार्ग का निश्चय उनके सुधार का उत्साह करता है। सदन का आगमन उसके प्रेम में पड़ने के लिए और अन्त में शादी द्वारा उसकी बहन की मुक्ति के लिए ही होता है। इस युवक से सम्पर्क के समय सुमन का चरित्र अस्पष्ट, अविकसित और

रहस्यमय रहता है। उससे समाज घृणा करता है, इस कारण उसके मस्तिष्क में उस दुनिया के लिए असन्तोष और अरुचि पैदा हो जाती है, जिसमें कि उसकी बहन भी शामिल है। अन्त में उसका पति समाज-सेवा का मार्ग दिखाता है। सुमन उस पर चलने के लिए तैयार नहीं है। यह लेखक का आदर्शवाद है जो उससे जीवन की इस भूमिका को स्वीकार करवाता है। वह वास्तव में इसके अनुकूल नहीं है। यह कुछ-कुछ ऊपर से लादी हुई चीज़ है। शरच्चन्द्र ने अपने उपन्यासों में ऐसी स्त्रियों का चरित्र-चित्रण अधिक यथार्थवादी ढंग से किया है। प्रेमचन्द का समाज-सुधार का उमड़ता हुआ उत्साह उनके पथ में बाधक होकर उनके प्रधान चरित्रों के सौंदर्य को नष्ट कर देता है। कहानी के प्रारम्भिक भाग में सुमन कुछ विश्वास लेकर चलती है परन्तु कहानी के पीछे के भाग में उसका चरित्र समाज-सुधार की बलि पर चढ़ जाता है।

पद्मसिंह मध्य वर्ग का एक विशेष प्रकार का प्रतिनिधि है। वह पुराने विचारों का है और अपने व्यवहार में नैतिकता का आग्रह रखता है। उसके चरित्र में आदर्श का भी पुट है। उसकी निजी मान्यताओं और सामाजिक व्यवहार के बीच भारी असंगतियाँ हैं। उसका मस्तिष्क कमज़ोर है। इस कारण वह सरलता से दूसरों के कहने में आकर वेश्याओं को नृत्य के लिए निमंत्रित कर लेता है। वह इससे घृणा करता है, लेकिन विवश है। सदन और शान्ता का वैवाहिक गतिरोध उसके दुर्बल चरित्र का परिणाम है। यह कल्पना करना भी कठिन हो जाता है कि ऐसा व्यक्ति कैसे एक समाज-सुधारक का कठिन कार्य कर सकता है। उसको जीवन की प्रेरणा कदाचित् विट्ठलदास से मिलती है। यह सजीव पात्र न होकर, साँचे में ढला हुआ-सा जान पड़ता है। उसकी एकमात्र अभिलाषा विधवाओं और पतित नारियों के उद्धार करने की है। प्रेमचन्द ने उसके चरित्र का चित्रण इसी रूप में किया है। उसके चरित्र में उन्होंने इस बात को स्पष्ट किया है कि एक समाज-सुधारक को अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए क्या-क्या

बाधाएँ पार करनी पड़ती हैं। उस सुधार के युग में मध्य वर्ग की जनता के लिए इसका मूल्य बहुत अधिक था। लेखक, जो कि आर्यसमाज की विचारधारा से प्रभावित था, अपने पात्र का चरित्र सामयिक प्रभाव और सामाजिक प्रगति के अनुकूल प्रस्तुत करने के लिए बाध्य था।

सदन का चरित्र कुछ थोड़ा-सा भिन्न प्रकार का है। उसके चरित्र की विलासिता अन्त में उसे सदाचारी बना देती है। अमरनाथ उसका मूल रूप है जो आरम्भ में लापरवाही और निरर्थकता से भरी ज़िन्दगी बिताता है, परन्तु पीछे चलकर सामाजिक और राजनीतिक कार्य के लिए विशाल क्षेत्र को अपनाता है। उसके व्यक्तित्व का विकास वास्तव में उन आन्दोलनों में होता है जिनका संचालन वह पीड़ितों की भलाई के लिए करता है। सदन के कार्य समाज तक ही सीमित हैं। अमरनाथ अपने कार्य के क्षेत्र का विस्तार अछूतों के राजनीतिक और आर्थिक पुनरुत्थान तक करता है। 'सेवासदन' और 'कर्मभूमि' के बीच अपनी विचारधारा को परिवर्तित करने और अपनी कला को विकसित करने के लिए प्रेमचंद ने बड़ी लम्बी छलाँग मारी है। सामाजिक चेतना-सम्पन्न मध्य वर्ग के एक विशेष प्रकार के लेखक से वे शोषण के विरुद्ध संघर्ष करती हुई जनता के लिए जनकलाकार बन गए हैं। दूसरे उपन्यासों में वर्णित विशाल जनसमूह की घातक दरिद्रता के सामने इस उपन्यास की वेश्याओं की समस्या सारहीन जान पड़ती है।

उपन्यास का सामाजिक ध्येय नितान्त स्पष्ट है। कई युगों से चली आती हुई परम्परा पर नैतिक और भावुकतापूर्ण दृष्टिकोण से निर्दयतापूर्वक आक्रमण किया गया है। अपने वर्ग के पवित्रतावादी दृष्टिकोण को लेकर चलने वाले इस लेखक की सम्मति में इस बुराई के कारणों की जड़ें मानव-प्रकृति में नहीं हैं, वरन् इसके अंकुर तत्कालीन वातावरण में मिलते हैं और आश्वासन और सहानुभूति को पाकर स्त्रियाँ पाप और घृणा के जीवन से बच सकती हैं। जिस बहुविवाह-प्रथा की उपज यह वेश्यावृत्ति है उसकी लेखक ने बिलकुल अवहेलना कर दी है। इस

सामाजिक बुराई का उसने जो विश्लेषण किया है वह भी उथला है और जो उपचार सुझाया है वह भी वैसा ही प्रभावरहित है। लेकिन वह सबसे पहले लेखक थे, जिन्होंने बड़े उत्साह के साथ इस समस्या पर लेखनी चलाई। 'सेवासदन' वह प्रथम यथार्थवादी, आधुनिक और साहित्यिक उपन्यास था जिसने हिन्दी-भाषी जनता में हलचल मचा दी। प्रत्येक व्यक्ति ने यह अनुभव किया कि साहित्य-गगन में एक नये नक्षत्र का उदय हो रहा है। पुराने ढंग की काल्पनिक जासूसी तथा प्रेम कहानियों और दूसरी भाषा से अनुवादित और उधार ली गई कहानियों के बाद इस तरह की नई कृतियाँ अधिक ताज़गी देने वाली थीं।

'वरदान' भी ऐसी ही प्रारम्भिक कृति है, जिसका सम्बन्ध मध्य वर्ग के जीवन से है। यह कृषि-सम्बन्धी महाकाव्य 'प्रेमाश्रम' के बाद प्रकाशित हुआ था। प्रेमचन्द ने अपनी वर्णन-शक्ति, परिपक्व मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और कथोपकथन की स्वाभाविकता का प्रदर्शन इस उपन्यास में किया है, लेकिन कथावस्तु इतनी प्रधान हो गई है कि चरित्र-चित्रण की ओर कम ध्यान जा पाया है। चूँकि इसका उद्देश्य सनसनी पैदा करना है, जीवन-तथ्यों का उद्‌घाटन नहीं, इसलिए कथावस्तु के संगठन में सजीवता की अपेक्षा घटनाओं का घटाटोप ही प्रधान रूप से मिलता है। सनसनीपूर्ण उपन्यासों से अपनी भूख मिटाने वाला लेखक उनके प्रभाव को छोड़ नहीं सका है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह उपन्यास उनके प्रारम्भिक प्रयत्नों में से है, जिनमें कथावस्तु का संगठन अप्रौढ़ और सामान्य कोटि का मिलता है। उपन्यास की मूल कथा प्रेम और कर्तव्य के द्वन्द्व पर आधारित है। इसके लिए वह एक युवक और युवती को प्रस्तुत करता है। वे बचपन से साथ पले हैं। यह स्वाभाविक है कि उन दोनों में गहरा अनुराग हो, लेकिन भाग्य उनका साथ नहीं देता। ब्रजरानी की माँ उसकी शादी एक अधिक सम्पन्न युवक से करने का निश्चय करती है। प्रताप को

इससे धक्का लगता है। प्रेम और कर्तव्य से पीड़ित लड़की की शादी एक कमजोर मस्तिष्क रखने वाले युवक कमलाचरण से हो जाती है। कमलाचरण एक विचित्र ढंग से अलग हो जाता है। वह अपने माली की लड़की के प्रेम में फँस जाता है। वह लड़की के पिता द्वारा रंगे हाथों पकड़ा जाता है। वह घर से भाग खड़ा होता है और एक चलती गाड़ी में चढ़ जाता है, लेकिन बिना टिकिट यात्रा करने के विचार से वह इतना अधिक भयभीत हो उठता है कि चलती गाड़ी से कूद पड़ता है और मर जाता है। बुरे आदमियों से बचने का यह अच्छा तरीका है। उसके माता-पिता भी ऐसे ही अद्‌भुत ढंग से हटाए जाते है। अपने भाग्य को आज़माने के मैदान में प्रतापचन्द ही अकेला रह जाता है। लेकिन वह अपने को अपराधी समझता है। उसके मन में प्रेम और कर्तव्य के बीच संघर्ष होता है। वह और कोई मार्ग न देख-कर साधू हो जाता है। भारतीय लेखकों के लिए यह सरल उपाय है। वे जीवन के इस प्रकार के संघर्ष को और किसी प्रकार से व्यक्त नहीं कर सकते। ऐसे संघर्ष का अन्त करने का दूसरा सुभीते का उपाय भाई-बहन का सम्बन्ध है। शरच्चन्द्र ने अपनी कहानियों में दूसरे उपाय का अवलम्बन किया है। प्रतापचन्द सन्यासी होकर समाज-सेवा करता है। बिरजन कविता लिखना प्रारम्भ करती है, जिसके कारण पाठकों में हलचल मच जाती है। लेकिन कहानी का अन्त यहीं नहीं होता। लेखक एक ऐसी रहस्यमय लड़की को उपस्थित करता है जो अधिकांश भारतीय लड़कियों की भाँति इस युवक से शादी करने के लिए धैर्य और शान्ति से प्रतीक्षा कर रही थी। सब लोगों में बिरजन ही प्रताप और महादेवी की शादी के लिए आगे बढ़ती है। वह उसके धैर्य और सहनशक्ति से अत्यधिक प्रभावित होती है। वह उससे शादी करने को राज़ी हो जाता है, लेकिन वह सन्यासिनी होने का निश्चय कर लेती है। यहाँ से कहानी एक अद्‌भुत मोड़ लेती है। महादेवी का चरित्र रहस्यमय ही रहता है। खोखले आदर्शवाद की रक्षा के लिए दिये गए लम्बे-

लम्बे व्याख्यान व्यर्थ हो जाते हैं। अपने आदर्शवाद के प्रचार के लिए लेखक को अनेक बाजीगर के-से खेल दिखाने पड़ते हैं। विरजन कविताएँ लिखती है और विदेशों तक उसकी कीर्ति फैल जाती है। अनावश्यक पात्रों से छुटकारा पाने का सबसे अच्छा उपाय मृत्यु है। प्रताप और महादेवी बिना अपने मानसिक संघर्ष की कष्टप्रद पीड़ा का प्रदर्शन किये साधू हो जाते हैं। कमलाचरण का अपने माली की लड़की से प्रेम कराया जाता है। उसकी मृत्यु बड़ी सनसनीपूर्ण होती है। प्रो० भटनागर जिन्होंने कि प्रेमचन्द पर एक आलोचनात्मक पुस्तक लिखी है, इस पात्र के प्रति बड़ी सहानुभूति रखते हैं; क्योंकि उसमें मानवीय कमज़ोरी है। दूसरे पात्र रक्त-मांस के नहीं हैं। वह निर्जीव चरित्रों में एकमात्र अपवाद है।

'*प्रतिज्ञा*', जो ऐसा ही उपन्यास है, १९०९ में लिखे गए 'प्रेमा' का परिवर्द्धित संस्करण है। यह विधवाओं के पुनर्विवाह की समस्या को लेकर चला है। सुधारक प्रेमचन्द ने विधवाओं के जीवन को नष्ट करने वाली इस सामाजिक कुरीति की बुराई का भण्डाफोड़ किया है। अमृतराय, जो स्वयं एक सक्रिय सुधारक है, एक लड़की से सगाई होने पर, एक विधवा से शादी करने का निश्चय करता है, जिसे वह चाहता है और प्यार करता है। वह उसकी साली है। उसने एक सार्वजनिक सभा में प्रतिज्ञा की है कि वह विधवा से शादी करेगा। इसी बीच प्रेमचन्द उसके लिए रंगमंच तैयार करते हैं। कथावस्तु के लिए एक विधवा की आवश्यकता पड़ती है। पूर्णा इसके लिए प्रस्तुत की जाती है। उसका पति हाल ही में नदी में डूब चुका है। दूसरे व्यक्ति भी उसके सम्मुख प्रेम का प्रस्ताव लेकर आते हैं। वह यद्यपि कमलाप्रसाद की पत्नी की सहेली है, लेकिन फिर भी वह उसे फँसाने का प्रयत्न करता है। वह उसे गाड़ी में बिठाकर धोखे से एक बाग में ले जाता है और बलात्कार करने की चेष्टा करता है। लेकिन उसके सतीत्व की रक्षा हो जाती है। पूर्णा उसका सिर फोड़ देती है और वह बेहोश होकर

ज़मीन पर गिर पड़ता है। उसे ऐसे ज़ोर का अघात पहुँचता है कि अन्त में वह सुधर जाता है। अमृतराय विधवाओं की स्थिति सुधारने के कार्य में लगा रहता है। जिस लड़की से उसकी शादी होने वाली थी उससे उसका मित्र शादी कर लेता है। पूर्णा अपने स्वामी की सेवा में लग जाती है। वह ध्यान में डूब जाती है। अमृतराय इस प्रकार एक विधवा से शादी करने की अपेक्षा विधवाओं की समस्या को सुलझाने का व्रत लेकर ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता है।

ऐसे समाज-संतप्त प्राणियों को आश्रय देना प्रेमचन्द को अत्यन्त प्रिय है। 'सेवासदन' ऐसी पतित नारियों को आश्रय देने का प्रारम्भिक प्रयत्न था, जिनके नैतिक पतन की पूरी जिम्मेदारी उन्हीं पर नहीं है। इस उपन्यास में विधवाओं के लिए वनिताश्रम की स्थापना की गई है। समाज सुधारक के नाते वह अपने पाठकों में केवल सामाजिक चेतना उत्पन्न करके ही सन्तुष्ट नहीं होते, सामाजिक बुराइयों के लिए क्रियात्मक हल सुझाने को भी उत्सुक रहते हैं। यदि शरच्चन्द्र से तुलना की जाय तो सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण में शरच्चन्द्र अधिक संयत जान पड़ेंगे। विधवा का जीवन उनकी कला का आधार है, लेकिन उनमें समाज-सुधार के लिए उत्साह नहीं है। उनके उपन्यासों में विधवाओं के जो बड़े-बड़े चित्र हैं वे अपने रंगों के लिए प्रसिद्ध हैं। वह सबसे अधिक रुचि चरित्र-चित्रण में रखते हैं। प्रेमचन्द का सम्बन्ध विशेष रूप से सामाजिक समस्या से रहता है। उनका उद्देश्य एक सामाजिक समस्या के आसपास पात्रों का जमघट खड़ा करना है। 'प्रतिज्ञा' रक्त-मांस के पात्रों वाले उपन्यास की अपेक्षा विधवाओं के उद्धार की समस्या से अधिक सम्बन्ध रखता है। इस उपन्यास में घटनाओं की प्रधानता इस बात की सूचक है कि यह उनकी आरम्भिक कृति है। पात्र और कथावस्तु दोनों ही सामाजिक ध्येय और सुधार-भावना के अधीन हैं।

'निर्मला' भी इसी कोटि का उपन्यास है। इसमें एक साथ दो

समस्याओं पर विचार किया गया है—एक तो दहेज की प्रथा और दूसरी एक जवान लड़की की एक ऐसे वृद्ध से शादी, जिसकी पत्नी मर चुकी हो। इसमें अलग-अलग तीन मध्यवर्गीय परिवार फँसे हुए हैं। उपन्यास में एक परिवार बाबू उदयभानु का है, दूसरा बाबू तोताराम का और तीसरा सिन्हा साहब का। उदयभानु के दो लड़कियाँ हैं। निर्मला शादी के लायक है। सिन्हा के पुत्र को उसके लिए खोजा गया है। सिन्हा शादी में खूब दहेज मिलने की आशा करते हैं। लड़की का पिता इसके लिए पच्चीस हज़ार रुपया नहीं दे सकता। वह अपनी पत्नी से झगड़ता है और क्रोध में घर छोड़कर चल देता है। इस समय तक कहानी सीधे-सादे ढंग से चली जाती है। अब वह अचानक एक गुण्डे के हमले का शिकार होता है, जिसे उसने तीन वर्ष के लिए जेल भिजवा दिया था। मुन्शी उदयभानु चल बसते हैं। इस कारण निर्मला की सगाई सिन्हा के पुत्र से नहीं हो पाती। वह निर्दयता से एक वृद्ध के हवाले कर दी जाती है, जिसके पहली पत्नी से तीन बड़े-बड़े लड़के हैं। युवती पत्नी को अपने युवक बेटों की देखभाल करनी पड़ती है। सबसे बड़ा लड़का मंशाराम उसी की उम्र का है। उसे उसके प्रति कुछ अनुराग हो जाता है। तोताराम स्वभावतः उनके प्रेम के प्रति शंकालु और ईर्ष्यालु हो उठता है लेकिन उसकी शंकाए निराधार हैं। तोताराम अपने पुत्र से अपना पीछा उसे होस्टल में भेजकर छुड़ाता है, जहाँ वह बीमार पड़ता है और मर जाता है। जियाराम उसके आभूषण चुराता है और उनसे नाता तोड़कर जीवन का अंत कर लेता है। बुड्ढे की वकालत चलनी कम हो जाती है। पूरा परिवार दरिद्रता की दशा को पहुँच जाता है। सियाराम ऊबकर एक साधू के साथ भाग जाता है। तोताराम भी घर छोड़ देता है। बेचारी निर्मला अपनी लड़की के साथ रह जाती है। वह भी मर जाती है। पूरी कहानी का अन्त एक घने विषाद में होता है, जो पाठक के कण्ठ को गद्गद कर देता है और उसकी आँखों को आँसुओं से भर देता है। प्रेमचन्द ने

दहेज की घातक प्रथा का भण्डाफोड़ किया है, जोकि इस दुःखान्त कथा का मूल कारण है। यही प्रथा इस अनमेल विवाह और उसके परिणामस्वरूप होने वाली वेदना को जन्म देती है। निर्मला मरती हुई कहती है—"मेरी लड़की की शादी किसी उचित व्यक्ति से की जानी चाहिए।" लेखक का मत है कि यह कोई व्यक्तिगत समस्या नहीं है वरन् यह एक सामाजिक रोग है, जिसका स्थायी उपचार होना चाहिए।

जैसा कि कहा जा चुका है, इस उपन्यास में चरित्रों का विकास पूर्ण रूप से नहीं हुआ। उपन्यासकार का उद्देश्य चरित्र-चित्रण नहीं है प्रत्युत एक सामाजिक समस्या का अध्ययन प्रस्तुत करना है। मध्य वर्ग के जीवन से सम्बन्ध रखने वाला उपन्यास 'ग़बन' इन उपन्यासों में एक अपवाद है। इस उपन्यास के नायक का चरित्र उसकी सामाजिक परिस्थितियों की दृष्टि से अत्यंत सुन्दर है, अन्यथा अपने प्रत्येक उपन्यास में लेखक ने अपने पात्रों का चरित्र-चित्रण स्थूल रूप से ही किया है और उनको अपनी कला की कूँची से छू-भर दिया है। निर्मला एक ऐसी स्त्री है, जो दहेज प्रथा की वेदी पर बलिदान हो जाती है। तोताराम एक विशेष प्रकार का ईर्ष्यालु और शंकालु बुड्ढा है, जो अपनी युवती पत्नी और युवक पुत्र के मिलने में भी संदेह करता है। मंशाराम का चरित्र विश्वसनीय नहीं है। वह एक ऐसे परिवार के कष्ट और संताप को बढ़ाने के लिए ही अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है, जो अन्त में पूर्णरूपेण नष्ट हो जाता है। निर्मला की छोटी बहन की शादी से सम्बन्ध रखने वाला आदर्श से युक्त प्रसंग एक विशेष उद्देश्य से रखा गया है। जिस डॉक्टर की शादी पहले उसके साथ होने वाली थी उसके लिए यह प्रायश्चित है। ऐसे पात्रों से छुटकारा पाने के लिए, जिनका आगे विकास नहीं हो सकता, लेखक के पास आत्महत्या और आकस्मिक मृत्यु ये दो ऐसे उपाय हैं, जिन्हें वह बहुधा काम में लाता है। 'निर्मला' में घटना और वस्तु का संगठन

सुन्दर है। सारी घटनाएँ एक ऐसी अभागी लड़की के जीवन के आस-पास केन्द्रित हैं, जो एक ऐसे धनी बुड्ढे के हाथ बेच दी जाती है, जो आयु की दृष्टि से उसका पिता होने योग्य है। प्रेमचन्द ने अपनी वासना को शान्त करने के लिए शादी करने वाले वृद्धों और अपनी लड़कियों के भाग्य का सौदा करने वाले पिताओं को कड़ी चेतावनी दी है।

'ग़बन' (१९३०) में एक ऐसी अत्यन्त रोचक समस्या को उठाया गया है, जो निम्न मध्यवर्ग की जनता के जीवन को प्रभावित करती है। एक ओर धन का निरन्तर अभाव और दूसरी ओर उच्च श्रेणी का रहन-सहन उनकी प्रसन्नता को नष्ट कर देते हैं। प्रेमचन्द ने एक ऐसे युवक की कथा लिखी है, जो अपनी नवविवाहिता पत्नी के लिए कीमती हार ख़रीदता है और उसकी बिना जानकारी के ऋण में फँस जाता है। अपने ऋण को चुकाने के लिए वह ग़बन करता है। मध्यवर्गीय सम्मान-भावना और अपने अभिमान के कारण वह ऋण और ग़बन का रहस्य अपनी पत्नी को नहीं बतलाता। यदि उसने उससे कहा होता तो उसने उस घातक आभूषण को लौटाकर आसानी से उसे बचा लिया होता। इस प्रकार नवदम्पति का जीवन ऐसे संकट से व्यतीत होता है, जो पति-पत्नी की प्रसन्नता के लिए हानिकारक है। पत्नी निस्संदेह गहनों की बेहद शौक़ीन है। पति एक मामूली क्लर्क होने के कारण उसकी माँग को पूरा नहीं कर सकता; फिर भी वह उसे मना नहीं कर सकता। ऋण से बुरी तरह दबने के कारण वह अपने दफ्तर से रुपये का ग़बन करता है और घर से भाग जाता है। वह अपने को दलदल में फँसा हुआ पाता है और ज्यों-ज्यों वह निकलने की कोशिश करता है त्यों-त्यों उससे निकलना उसके लिए कठिन होता जाता है। रमाकान्त का पूरी तरह नैतिक पतन हो जाता है। वह चाहे जितना झूठ बोल सकता है, माँग सकता है, भोली-भाली स्त्रियों के सतीत्व के साथ खिलवाड़ कर सकता है, अपनी रक्षा के लिए मुखबिरी तक कर सकता है और

वेश्याओं के यहाँ भी आ-जा सकता है। परिस्थितियों की विषमता उसे जीवन के निम्न मार्ग पर चलने को बाध्य करती है। यह उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विश्लेषण है। उसकी पत्नी जालपा ही अकेली उसका सुधार करने और उसकी प्रतिष्ठा को बचाने के लिए शेष रह जाती है। जैसे ही उसे उसकी आर्थिक स्थिति का पता चलता है, बस अपने सोने के कड़े बेचकर ऋण चुका देती है। यह उसके त्याग का श्रीगणेश है। कहानी में वह भारतीय नारी की प्रतिनिधि है। वेश्या को जब उसके त्याग का पता चलता है तो उसके पति को उसे सौंपकर स्वयं नदी में डूब जाती है। उसके लिए यह बहुत बड़ा त्याग है। इस प्रकार कहानी में एक वेश्या का चरित्र-परिवर्तन भी सम्मिलित हो जाता है। एक छोटी-सी कथा उपन्यास में ऐसी भी है, जो एक जवान विधवा की व्यथा का दिग्दर्शन कराती है। इस विधवा की शादी एक वृद्ध और धनी-मानी वकील से होती है। उसका जीवन भी वैसा ही दुःखपूर्ण है, परन्तु वह अपनी कथा का अन्त आत्महत्या द्वारा कर लेती है। जिन पात्रों से लेखक किसी प्रकार भी छुटकारा नहीं पा सकता उनके लिए यह उपाय रामबाण है।

विश्लेषण और आलोचना के लिए उपन्यास की कथावस्तु को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम भाग का सम्बन्ध इलाहाबाद से अधिक है और दूसरे का कलकत्ता से। दोनों भागों का केन्द्र-बिन्दु रमाकान्त है। वही दोनों के बीच की कड़ी है। रतन और जोहरा की कथाएँ प्रधान कथा की सहायक हैं। वे कथा से गहरा सम्बन्ध रखती हैं। इस उपन्यास में प्रेमचन्द का वस्तु-कौशल निश्चय ही विकास को प्राप्त हुआ है। उन्होंने वस्तु-संगठन की कला पर अधिकार पा लिया है। पहले की तरह अब वह ऐसी घटनाओं का प्रत्यक्ष समावेश नहीं करता जो पाठक को आश्चर्य में डाल दें या जो उसकी भावनाओं में तूफ़ान डाल दें। इस उपन्यास में तथ्यकथन की प्रवृत्ति कम है। रतन के चरित्र का समावेश एक भारतीय नारी के महान् आदर्श को दिखाने के लिए

किया गया है। ज़ोहरा की गाथा एक पतित नारी के उत्थान पर प्रकाश डालती है। यह उनकी सबसे प्रिय कथा है। शेष कथा वास्तविक कथा-संगठन और सजीव चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि की है। जीवन को अभिव्यक्त करने के जो यथार्थवादी और आदर्शवादी ढंग हैं, उनके लिए प्रेमचन्द के हृदय में सदैव संघर्ष रहा है। प्रस्तुत उपन्यास में यथार्थवाद की प्रवृत्ति उभरकर आई है। लेकिन उन्होंने जीवन की आवश्यक बातों को भावुकता से ही अपनाया है। सामाजिक समस्याओं और पात्रों के चरित्र का निरूपण करने में वे भावुकता को नहीं छोड़ सके हैं। 'ग़बन' एक ऐसा गठा हुआ उपन्यास है, जिसमें थोथे आदर्शवाद से उत्पन्न अनावश्यक विवरणों को जान-बूझकर बचाया गया है। इससे पता चलता है कि लेखक ने जीवन के समझने का एक सुन्दर और निजी ढंग खोज निकाला है।

कृषि-समस्याओं का निरूपण करने वाले पहले के उपन्यासों में प्रमुख पात्रों का जो रूप होता था, उससे इस उपन्यास के नायक रमाकान्त का रूप बिलकुल भिन्न है। वह उन विचित्र आदर्शवादियों में नहीं है, जिनके चरित्र में कोई परिवर्तन नहीं होता। वह न तो बहुत अच्छा ही है और न बहुत बुरा ही; बल्कि वह परिस्थिति, शिक्षा और सामाजिक वातावरण का प्राणी है। वह परिस्थितियों का सामना करने में अत्यन्त कमज़ोर है और उनका दास बनकर रहता है यह धारणा कि पात्र वातावरण की उपज होते हैं, इस उपन्यास में नये रूप में ही विकसित है लेखक ने इस कहानी को लिखने से पहले गाल्ज़वर्दी के नाटकों का अनुवाद किया था, इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उन नाटकों का इस कृति पर प्रभाव पड़ा है। उनके दूसरे पात्रों की भाँति रमाकान्त रूढ़िवादी साँचे में ढला हुआ नहीं है। वह निम्न मध्य वर्ग का कोमल हृदय युवक है और हानि-भावना से पीड़ित है। वह झूठ बोलकर अपनी दरिद्रता और अहंभावना को छिपाना चाहता है, जिससे उसको कोई विशेष लाभ नहीं होता। इतना होने पर भी वह अपनी

मानवीय कमज़ोरियों के लिए सहानुभूति का पात्र है। जालपा नारी के प्राचीन आदर्श को अपनाती है और अपने स्वामी के लिए सर्वस्व निछावर करती है। कानून और पुलिस के पंजे से उसे छुड़ाने में वह अत्यन्त निपुण है। उसमें कष्ट सहन करने की अद्भुत क्षमता है। अन्य पात्र वैसे ही कल्पनात्मक दृष्टिकोण और गहरी सहानुभूति के साथ चित्रित हैं देवीदीन अपने आतिथ्य, सत्यवादिता, सादगी, देशभक्ति और अपने शराबीपन के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

यह सच है कि प्रेमचन्द मध्य वर्ग का चित्रण करते हैं लेकिन अपने आरम्भिक काल में वे मध्य वर्ग का जैसा चित्रण करते थे, उससे यह चित्रण सर्वथा भिन्न कोटि का है। उदारहण के लिए 'सेवासदन' में एक सामाजिक समस्या है। इस उपन्यास के पात्र इस समस्या का स्पष्टीकरण करने के लिए ही आते हैं। यद्यपि उपन्यास की प्रमुख पात्र सुमन है तथापि वह कहानी के सामाजिक ध्येय की सहायक बनकर ही आती है। 'प्रतिज्ञा' और 'वरदान' में भी मध्य वर्ग के परिवारों में अनमेल विवाहों की समस्या है और चरित्रों का महत्त्व उनके सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित होने के नाते ही है। कृषक-जीवन-सम्बन्धी उन कृतियों के बाद, जिनमें १९२०-२२ के महान् राष्ट्रीय आन्दोलन का वर्णन है, प्रेमचन्द सामूहिक संघर्ष और हलचल से अवकाश ग्रहण करके अब भयानक सामाजिक वातावरण के विरुद्ध व्यक्ति के संघर्ष पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए जान पड़ते हैं। वे उस व्यक्ति पर अधिक जोर देते हैं, जो धीरे-धीरे अपने वर्ग से अलग हो गया है और सामाजिक वातावरण की दृष्टि से अध्ययन की वस्तु बन गया है। यही वह वस्तु है, जिसे लेखक ने इस उपन्यास में दिखाया है। प्रेमचन्द नायक को उसकी शिक्षा और उसके वर्ग की दृष्टि से चित्रित करते हैं। वह इतना कमज़ोर है कि जिस सामाजिक वातावरण की वह उपज है और जिसका वह शिकार है, अपने सबसे बड़े उसी दुश्मन के खिलाफ़ वह नहीं लड़ सकता। राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारम्भिक काल में अन्य प्रमुख पात्रों ने

साहसपूर्ण संघर्ष करके जो प्रशंसा पाई उसके मुकाबले में वह दया का ही पात्र बन पाता है। यदि 'सेवासदन' (१९१४) मध्य वर्ग के जीवन का चित्रण करने वाला प्रथम उपन्यास है तो 'ग़बन' (१९३०) अन्तिम कृति है जो उनकी कला के रूप को विशेष रूप से स्पष्ट करती है। इस १६ वर्ष के समय में लेखक ने अपनी कला को प्रौढ़ता दी है और अपने शिल्प-विधान को विकसित किया है।

उनका एक और अच्छा उपन्यास *'कायाकल्प'* (१९२८) इस उपन्यास से दो वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास में अनेक प्रकार की कथाओं का सम्मिश्रण है। उपन्यास को दो पृथक्-पृथक् भागों में विभाजित किया जा सकता है। एक का सम्बन्ध सामाजिक समस्या से है और दूसरे का सम्बन्ध आध्यात्मिक और रहस्यमय शक्तियों से। इसकी कथावस्तु के निर्माण में छः कथासूत्रों का समावेश किया गया है। परिणाम यह हुआ है कि कथा में अत्यधिक जटिलता आ गई है। इन विभिन्न कथाओं को पृथक् करना बड़ा मुश्किल है। वे कहीं-कहीं एक-दूसरी के समानान्तर चलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रेमचन्द ने यह जटिल कथावस्तु उन पाठकों की दृष्टि से प्रस्तुत की है जो कहानी में अद्भुत तत्त्व के लिए बेचैन रहते हैं। जिस भाग में सामाजिक समस्या का समावेश है उसमें भी कई ऐसी अद्भुत घटनाएँ हैं जो सनसनी पैदा करती हैं—जैसे गोवध, साम्प्रदायिक दंगे, जेलर के साथ झगड़ा आदि। दूसरा भाग, जो स्वतंत्र रूप से विकसित होता है और अन्त में एक आकस्मिक झटके के साथ इससे मिल जाता है, उत्तेजित करने वाली घटनाओं और रोमांचित करने वाली कहानियों से भरा है। घटनाएँ और कहानियाँ प्रेम, रोमांस, आत्माओं के दूसरे के शरीर में प्रवेश कर जाने और एक स्त्री के सदा युवती बने रहने की अद्भुत बातों से पूर्ण हैं। नितान्त असम्भव और रोमांचक घटनाओं के सम्मिश्रण के कारण पाठकों की शिथिल शिराएँ कुछ समय के लिए उत्तेजित हो जाती हैं।

चक्रधर-मनोरमा प्रथम कहानी के केन्द्र हैं। दूसरी कहानी का विषय रूप-परिवर्तन है। पहली का निर्माण और निर्वाह यथार्थवादी ढंग पर हुआ है, दूसरी का रहस्यवादी और आदर्शवादी ढंग पर। समझ में नहीं आता कि एक ही उपन्यास में इन दो कथाओं को लेखक ने कैसे मिला दिया। सावधानी और परिश्रम से किये गए विवेचन द्वारा छः प्रसंग ऐसे मिलते हैं जो सफल और असफल प्रेम का वर्णन करते हैं। चक्रधर-मनोरमा की कहानी असफल प्रेम की कहानी है। अहिल्या-चक्रधर की कथा लौकिक प्रेम से सम्बन्ध रखती है। मनोरमा-विशाल-सिंह की कहानी खण्डित प्रेम की कहानी है। रोहिणी-विशालसिंह की कथा शिशुहीन और असफल प्रेम की है। महेन्द्रसिंह-देवप्रिया की कहानी रहस्यमय प्रेम की है और हरिसेवक-लौंगी की कथा का आधार आध्यात्मिक प्रेम है। प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में प्रेम के विभिन्न रूपों और उनके उद्देश्यों की व्याख्या करने की चेष्टा की है। वह प्रेम, विवाह, रोमांस और उन्मुक्त प्रेम की छानबीन करते हैं। उपन्यास की अन्त-र्निहित कथा जीवन के महत्त्व और रहस्य से सम्बन्ध रखती है, लेकिन अस्पष्टता के आवरण में वह इतनी ढक गई है कि कहानी में कई स्थानों पर छहों कथासूत्र अदृश्य होते दिखाई देते हैं।

चक्रधर विश्वविद्यालय का चमकता हुआ स्नातक है। वह अपना जीवन समाज-सेवा में लगा देता है। एक लड़की को प्राइवेट रूप से पढ़ाता है और उसके प्रति उसे तीव्र अनुराग होने लगता है, वह भी उसे प्रेम करने लगती है लेकिन शीघ्र ही ये प्रेमी बिछुड़ जाते हैं। चक्रधर एक अनाथ बालिका से शादी कर लेता है। मनोरमा की शादी एक ऐसे वृद्ध ज़मींदार से होती है, जिसकी तीन-तीन पत्नियाँ मौजूद हैं लेकिन जिसके कोई सन्तान नहीं है। वह प्रेम और कर्त्तव्य के बीच पिस जाती है। यह स्पष्ट है कि वह ऐसा अपने उस प्रेमी से पूछकर ही करती है, जो स्वयं इस ज़मींदार की ज़मींदारी में रहने वाले किसानों की भलाई में लग जाता है। प्रेमचन्द इस उपन्यास में ग़रीब किसानों को

नहीं भूलते, लेकिन अपने अन्य उपन्यासों की भाँति इस उपन्यास के आगे के अध्यायों में वे उनको प्रधानता नहीं देते। चक्रधर को एक पुत्र की प्राप्ति होती है। मनोरमा उस पर अपने प्रेम की वर्षा करती है। अहिल्या रंगमंच को छोड़ देती है और मर जाती है। वह उस वृद्ध की खोई हुई बालिका निकलती है। कहानी में यह अद्भुत संयोग की बात है। वृद्ध विशालसिंह अपनी नवविवाहिता पत्नी के प्रेम को जीतने के लिए जी-तोड़ परिश्रम करता है। वह अपनी समस्त ज़मींदारी और सम्पत्ति के लिए शिशु शंखधर को गोद ले लेता है। उपन्यास के दूसरे भाग में राजकुमारों और ज़मींदारों के पतित जीवन की कहानी है। देवप्रिया सदैव युवती रहने की कला जानती है। उसके पास एक ऐसी दवा है, जिसकी कुछ बूँदें पीने से मनुष्य अपने यौवन को बनाए रख सकता है। यह रहस्यमय शक्ति, घृणित प्रेम और नारकीय जीवन की विलक्षण कहानी है। यह प्रधान कथा के साथ-साथ चलती है और पुनर्जन्म और आत्माओं के दूसरे शरीरों में प्रवेश करने का वर्णन करती है। क्या पुनर्जन्म की स्मृति का बना रहना सम्भव है? क्या मनुष्य का जन्म पूर्वजन्म की अपूर्ण अभिलाषाओं को पूरा करने के लिए होता है? क्या कोई व्यक्ति यौगिक क्रियाओं द्वारा सदा युवा बना रह सकता है? इन्हीं अध्यात्मविद्या-सम्बन्धी समस्याओं पर उपन्यास के इस भाग में प्रकाश डाला गया है। लेखक रहस्यवाद के भीतर खो जाने का जो प्रयत्न करता है उसका कारण समझने के लिए १९२०-२२ के असहयोग-आन्दोलन के विफल होने के बाद की राजनीतिक परिस्थिति का अध्ययन आवश्यक है।

उपन्यास का प्रमुख पात्र चक्रधर है। उसके ऊपर दो ज़िम्मेदारियाँ हैं—एक तो उस लड़की के प्रति प्रेम और दूसरी जनता की सेवा। वह साहसी और अपने विचार व्यक्त करने में स्वतन्त्र है, जैसा कि वह अपने जीवन के प्रारम्भिक भाग में करता है। उसके चरित्र को कई बार कसौटी पर कसा गया है, पर वह हर बार खरा उतरा है। गोवध के समय,

अछूतों से बेगार लेने के समय और जेलर के विरुद्ध आन्दोलन करने के समय वह अपने प्राणों की बाज़ी लगा देता है। वह कांग्रेस आन्दोलन का एक विशेष प्रकार का अहिंसक सैनिक है। अपनी सुधार-भावना के उत्साह में ही वह अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध एक अनाथ लड़की से शादी करता है। उसके भीतर की राष्ट्रीय चेतना ने ही उसके जीवन को बदल दिया था। पीड़ित जनता के लिए वह अपनी सुख-सुविधा की ज़िन्दगी को छोड़कर उस जनता के शोषकों के विरुद्ध लड़ता है। उसके चरित्र की इस विशेषता को प्रेमचन्द ने इतना बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया है कि उनका आदर्शवाद खोखला और निर्जीव-सा हो गया है। उसमें मानवीय स्पर्श का अभाव है। प्रेमी के नाते भी उसका चरित्र अस्पष्ट है। वह जानता है कि मनोरमा उसे प्यार करती है, तब भी वह उसके प्रति अपने प्रेम का प्रकाशन नहीं करता। अपने प्रेम को छिपाना उसके दब्बूपन और कायरता को प्रकट करता है। वह उसे भूल भी नहीं सकता। वह उससे आर्थिक सहायता लेता है और फिर भी उससे दूर रहता है। जनता की सेवा की प्रतिज्ञा भी वह पूर्ण नहीं कर पाता। आरम्भ में वह सुधारक होता है लेकिन अन्त में रोगियों को दवाइयाँ बाँटने वाला साधू हो जाता है। यह समझ में नहीं आता कि आरम्भ के अधिक प्राणवान कार्य की अपेक्षा उसने यह परोपकार का कार्य क्यों अपनाया है। या तो इसका कारण प्रेम में असफल होना हो सकता है या इसका उत्तरदायी वह युग हो सकता है, जिसमें कि यह उपन्यास लिखा गया था। असहयोग-आन्दोलन के बाद भारत में एक प्रकार की निराशा-सी छा गई थी। इसने साम्प्रदायिक दंगों को जन्म दिया। इस उपन्यास में इन दंगों की एक झलक दी गई है। सामयिक परिस्थिति के प्रति चक्रधर का दृष्टिकोण एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता का है। वह अपने को असहाय और पृथक् अनुभव करता है। जीवन के अन्तिम दिनों में परोपकार के कार्य में उसकी रुचि से उस युग की विकृति का पता चलता है। इस युग के सामाजिक और राजनीतिक जीवन की छोटी-से-छोटी

हलचल को भी व्यक्त करने वाले प्रेमचन्द सामाजिक समस्याओं से हट-कर जीवन की रहस्यमयता में प्रवेश करते हैं। यह अत्यन्त महत्त्व की बात है कि उन जैसा प्राणवान लेखक जीवन की आध्यात्मिक व्याख्या करे। चक्रधर का चरित्र जीवन से पलायन की प्रवृत्ति का प्रतीक है।

मनोरमा भी निराशा और असफलता को ही व्यक्त करती है। इस भोली-भाली बालिका ने चक्रधर के लिए अपने सुख का बलिदान कर दिया। यद्यपि उसके भीतर निराश प्रेम का घुन लगा हुआ था तथापि वह सतीत्व के आदर्श की रक्षा करती है। भ्रमजाल में फँसी हुई इस बालिका का लेखक ने अत्यन्त करुण चित्र अंकित किया है। राजा विशालसिंह एक पतित व्यक्ति है। वह अपनी जवानी की भाँति ही बुढ़ापे में भी कामुक होने का प्रयत्न करता है। उसकी चौथी पत्नी से भी कोई पुत्र नहीं होता। अपने जीवन की निराशा को मिटाने के लिए वह ग़रीब किसानों का बुरी तरह शोषण करता है। अपने उड़ाऊ और गोद लिये हुए पुत्र के लौटने पर वह ईश्वर की शरण लेता है और धार्मिक तथा उदार बन जाता है। वह यह जानने को उत्सुक है कि उसे अपने जीवन में दुख क्यों भोगना पड़ा और उस अकेले को ही भाग्य के हाथ का खिलौना क्यों बनना पड़ा। उसे अपने दत्तक पुत्र की मृत्यु का दुख भी देखना पड़ा। उसकी पत्नियों में चरित्र की दृष्टि से रोहिणी ही विशेष व्यक्तित्व रखती है। वह सरलहृदया, ईमानदार और ममतामयी है। वह पति का प्रेम प्राप्त करती है और आनन्दमय जीवन बिताती है। जब उसे प्रेम और सुख नहीं दिया जाता तब वह पद-पद पर अपने पति का विरोध करती है और उसका बुरा चेतती है। सोलह वर्ष तक विवाहित जीवन बिताने के पश्चात् वह मर जाती है। यह पता नहीं चलता कि वह आत्महत्या करती है या स्वाभाविक मृत्यु से ही मरती है। उसके चमकते हुए चरित्र के सामने उसकी सभी सौतें फीकी-सी दिखाई देती हैं।

उपन्यास में हरिसेवक और लौंगी का जोड़ा आदर्श है। लौंगी

कर्त्तव्य की प्रतिमा है। हरिसेवक प्रेम का निर्भर है। वह उसकी भावना है, आत्मा है, प्रेरणा है। वह कुछ स्वार्थी, विलासी और मस्तिष्क से कमज़ोर है, फिर भी एक स्त्री के लिए वह आदर्श पति है। डॉ० भटनागर की सम्मति में यह उपन्यास लेखक के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों में से है। इस आलोचक के साथ, जो कि इसमें शक्तिशाली चरित्र-चित्रण और मानव-मन का सूक्ष्म विश्लेषण पाता है, सहमत होना कठिन है। ऐसा प्रतीत होता है कि आलोचक ने अपने निर्णय का आधार लेखक की उस वर्णन-शक्ति को बनाया है जिसका स्वर निश्चय ही तीखा है और जिसमें रंगों का बाहुल्य है। वैसे इसका कथा-संगठन उखड़ा-पुखड़ा और अस्पष्ट है। इसका चरित्र-चित्रण असंगत है और इसका उद्देश्य धुँधला और रहस्यमय है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उपन्यास की रचना राजनीतिक निराशा और सामाजिक विशृङ्खलता के युग में हुई थी। इसीलिए लेखक का दृष्टिकोण अस्पष्ट और मलिन है। देश के राजनीतिक जीवन के छोटे-से-छोटे परिवर्तन के प्रति सजग रहने वाले प्रेमचन्द इस युग में बहुत दिन तक बनी रहने वाली साम्प्रदायिक समस्या को नहीं भुला सकते थे। उन्होंने साम्प्रदायिक दंगों की जिम्मेदारी उन धर्म के ठेकेदारों और साम्प्रदायिक नेताओं पर रखी है, जिन्होंने अपने स्वार्थ-साधन के लिए उस समय परिस्थिति से लाभ उठाया जब कि राजनीतिक जीवन बिलकुल उतार पर था और जब कि जनता के ध्यान को खींचने के लिए कोई रचनात्मक कार्यक्रम नहीं था।

यहाँ प्रेमचन्द के उन सभी उपन्यासों का विहंगावलोकन समाप्त होता है, जिनमें उन्होंने केवल मध्य वर्ग के जीवन और उसकी समस्याओं का विश्लेषण किया है। प्रेमचन्द ने इस जीवन का पूरा चित्र खींचा है और उन विभिन्न प्रकार की समस्याओं का विश्लेषण किया है, जो इस वर्ग के जीवन को प्रभावित करती हैं। वास्तव में वे पहले हिन्दी उपन्यास-कार हैं, जिन्होंने उत्साह और ईमानदारी के साथ सामाजिक समस्याओं पर लिखा है। वह इन समस्याओं के उल्लेख-मात्र से सन्तुष्ट होने वाले

नहीं हैं, वे हृदय से उन बुराइयों को दूर करना चाहते हैं, जिन्होंने मध्य वर्ग को रोगी और पतित बना दिया। इन बुराइयों को दूर करने के जो उपाय उन्होंने सुझाए हैं वे उनकी सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं। वे उनकी उस विचारधारा को स्पष्ट करती हैं, जो उन्होंने इस वर्ग के सदस्य के नाते बना ली थीं। इस पर उनके जन्म और शिक्षा-सम्बन्धी विशेष परिस्थितियों ने भी प्रभाव डाला था। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं के प्रति उनकी सुधारवादी भावना ने ही उनके दृष्टिकोण और विचारधारा का निर्माण किया था। यही दृष्टिकोण है, जो न केवल मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं के प्रति उनके रुख को बताता है, बल्कि ज़मींदारों और किसानों तथा पूँजीपतियों और मज़दूरों के प्रति उनकी भावना का भी स्पष्टीकरण करता है।

: ४ :

भूमिपति

'प्रेमाश्रम' (१९२२) एक कृषि-सम्बन्धी महाकाव्य है, जिसमें औद्योगिक सभ्यता से पहले के गाँव की सामाजिक और आर्थिक दशा का पूर्ण चित्र मिलता है। सरकारी अफ़सरों और उनके पिट्ठुओं के बल पर ज़मींदार गाँव के किसानों से झगड़ते हैं। ये सभी घटनाएँ लखनपुर नामक गाँव में होती हैं। एक विस्तृत चित्रपट पर समाज के दो दलों के पारस्परिक संघर्ष का चित्रण किया गया है। उपन्यास की केन्द्रीय विचारधारा का चुनाव व्यक्ति के सामाज के साथ हुए संघर्ष से किया गया है। मनोहर और उसका लड़का ज़मीदारों, सरकारी मशीन के पुर्जों और टटपूँजिये सरकारी अफसरों द्वारा किसानों के शोषण के विरुद्ध विद्रोह की भावना का प्रतिनिधित्व करते हैं। झगड़ा एक मामूली ही बात से शुरू होता है। ज़मींदार का चपरासी किसानों से घी मँगाता है। हर एक आदमी घी देने को राज़ी हो जाता है। मनोहर इस अतिरिक्त कर को देने से मना कर देता है। उसका लड़का बलराज अपने पिता की अपेक्षा इस मामले में और भी दो कदम आगे बढ़ जाता है। शोषकों की सारी जमात इससे बौखला उठती है। वे इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकते कि कोई किसान मालिकों को चुनौती देने की धृष्ठता भी कर सकता है, भले ही उनकी माँग अन्यायपूर्ण हो। कहानी का शेष भाग बताता है कि किस प्रकार सरकारी अफ़सर और इस गाँव के मुआयने के लिए आने वाले उनके आनुयायी सारे गाँव पर अत्याचार करते हैं। सुक्खू चौधरी को कोकीन रखने के अपराध में जेल भेज दिया जाता है और यह कोकीन ज़मींदार का कारिन्दा एक छोटे सरकारी कर्म-

चारी से मिलकर सुक्खू के यहाँ इसलिए रखवाता है कि जिससे उसे दण्ड दिया जा सके। दुखरन भगत को पुलिस इसलिए कोड़े लगाती है कि वह एक टैनिस के लॉन की घास छीलने से इन्कार कर देता है। गाँव के किसान यह सारा कार्य बेगार में करते हैं। ज़मींदार के कारिन्दे गौशखाँ द्वारा एक स्त्री के, जो कि मनोहर की पत्नी है, कलंकित और अपमानित होने पर सारे किसान भड़क उठते हैं। यह ऐसी बात है कि जिसे वह नहीं सह सकते। मनोहर कारिन्दे को क़त्ल कर देता है और अपने जीवन का भी अन्त कर लेता है। इस घटना के बाद सारा गाँव ज़मींदार की ताक़त का मुकाबला करने को खड़ा हो जाता है।

ग़रीबों की सेवा करने वाला प्रेमशंकर उनका अगुआ बनता है और उनके पक्ष की जीत हो जाती है। वह उन्हें इस प्रकार एकत्रित और संगठित करता है, जिससे कि वे ज़मींदार के खिलाफ़ संगठित मोर्चा बना सकें। वह वास्तव में एक समाज-सुधारक था और उसने कुछ ऐसी बातें उनके जीवन में ला दीं जिनसे उनकी स्थिति सुधर गई। पुस्तक के अन्त में प्रेमचन्द एक सुखी देहात का आदर्श चित्र अंकित करते हैं। इसी बीच में अलादीन का जादुई चिराग़ जलता है और जो गाँव पूर्णरूपेण खण्डहर हो चुका था वह सुखी और समृद्ध बन जाता है। लोभी ज़मींदार निःस्वार्थ व्यक्ति बन जाता है। चीते के दाग़ मिट जाते हैं। समाजवादी विचारधारा रखने वाला मायाशंकर किसानों का क्रूरतापूर्ण शोषण करने वाले अपने चाचा को हटाकर स्वयं कार्य सँभालता है। प्रेमचन्द वातावरण को बदलने वाले व्यक्तियों में परिवर्तन होना तो दिखाते हैं लेकिन शोषण का आधार सामन्तवादी प्रथा पर, जो कि इस समस्या की जड़ है, प्रहार नहीं करते। उनकी विचारधारा एक सुधारक की है, क्रांतिकारी की नहीं। लेकिन फिर भी वे प्रगतिशील हैं क्योंकि वे जमींदारों और उनके पिट्ठुओं द्वारा हुए किसानों के शोषण की निन्दा करते हैं। वे पुलिस और सरकारी अफसरों के अमानवीय अत्याचारों का यथातथा चित्र अंकित करते हैं। मध्यवर्गीय समझौते की विचारधारा लेखक

के मार्ग में बाधक होती है। समस्या के समाधान के लिए उन्होंने आदर्श कृषि फार्म की बात सुझाई है। बदलती हुई परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए नष्ट होती हुई सामन्ती दुनिया को एक दूसरी ही तरह पेश किया गया है। पहला भाग, जो किसानों के जीवन और उनकी समस्याओं से सम्बन्ध रखता है, यथार्थवादिता से परिपूर्ण है और पाठक को वस्तुस्थिति से परिचित कराता है, लेकिन दूसरा भाग, जो इन समस्याओं के हल से सम्बन्ध रखता है, आदर्शवाद की शरण लेता है और उसमें यथार्थ का नाम तक नहीं है। ग्राम्यजीवन के यथार्थ चित्रण से आदर्शवादी हल बिलकुल विपरीत है। एक का दूसरे से कोई सजीव सम्बन्ध नहीं है। यह शिल्प-विधान लेखक के जीवन के प्रति दृष्टिकोण का परिणाम है।

ज्ञानशंकर जमींदारी प्रथा का नवीनतम संस्करण है। वह स्वार्थी, लालची, विलासी और क्रूर है। अपने किसानों, परिवार और संसार के साथ उसका जो व्यवहार है, उससे पता चलता है कि वह कितना पतित है। अपने कारिन्दों द्वारा किसानों के निर्दयतापूर्ण शोषण के लिए वही जिम्मेदार है। अपने भाई के साथ किया गया उसका बर्ताव उसे नीच और लालची सिद्ध करता है। वह अपने भाई के जीवन का अन्त करने के लिए इसलिए षड्यन्त्र रचता है कि उसके हिस्से की जायदाद को हथिया सके। उपन्यास में एक विधवा के साथ उसके प्रेम-सम्बन्ध का विस्तार से जो वर्णन किया गया है, उससे भी यह पता चलता है कि वह प्रेम की अपेक्षा उसकी जायदाद पर ही अधिक दृष्टि रखता था। सांझे परिवार की समस्याओं को भी ईमानदारी और सचाई के साथ पेश किया गया है। आधुनिक शिक्षा ने प्राचीन सांझे परिवार की प्रथा के पारस्परिक सहयोग के आधार को नष्ट कर दिया है, तभी वह अपनी अलग दुनिया बसाने की चिन्ता में रहता है। उसका चाचा प्रभाशंकर जो सामन्ती प्रथा का अवशिष्ट है, उसके इरादे को जानकर दुखी होता है। उसकी पत्नी भी उससे सहमत नहीं होती, लेकिन वह अपने मार्ग में

आने वालों को जोर का धक्का देने की सोच चुका है। व्यक्तिवाद को महत्त्व देने वाली पूँजीवादी सभ्यता के सम्पर्क ने उसके जीवन के प्रति दृष्टिकोण को अत्यधिक पुष्ट किया है। वह अपने ससुर और विधवा साली को फँसाने का प्रयत्न करता है। वह अपने उस भाई को भी नहीं छोड़ता, जो विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त करके लौटता है। वह अपने भाई की पत्नी को उसके खिलाफ भड़काता है। वह उनके हिस्से की जायदाद को हड़पने के लिए यह सब और इससे भी अधिक करता है। धन के लिए उसकी भूख बढ़ती ही जाती है। उसका निकृष्टतम चित्र अंकित करके प्रेमचन्द ने पूँजीवादी सभ्यता की निन्दा की है।

ज्ञानशंकर का अपने किसानों के साथ जो सम्बन्ध है, वह कैसा ही परोक्ष और देखने में बनावटी जान पड़ता हो, लेकिन फिर भी उपन्यास के दूसरे कथासूत्रों का निर्माण करता है। लखनपुर की कहानी उसके उत्थान-पतन का वर्णन करती है। मनोहर की आत्महत्या के बाद हमारा ध्यान इन ज़मींदारों के जीवन पर केन्द्रित हो जाता है। सामान्य और आलंकारिक दोनों ही दृष्टियों से सारा गाँव मरघट के रूप में बदल जाता है। ज़मींदारों के कारिन्दों के अमानवीय अत्याचार और संक्रामक रोगों तथा बाढ़-वर्षा के रूप में आई हुई दैवी अपत्तियों से सारी आबादी नाश और मृत्यु के मुख में समाने लगती है। संतप्त सज्जन व्यक्तियों द्वारा ग्रामीण जीवन के पुनरुद्धार का जो प्रगतिशील क़दम उठाया जाता है, उससे उपन्यास का अन्त होता है। डॉ० प्रियानाथ, बैरिस्टर इरफ़ान अली, ज्वालाप्रसाद आदि मध्य वर्ग के व्यक्ति जनता की सेवा में रत रहते हैं। प्रेमशंकर उनका अगुआ है। वे सब भयंकर कठिनाइयों के विरुद्ध असफल युद्ध करते हैं। उपन्यास का आरम्भिक भाग, जिसमें ज़मींदारों और उनके पिट्ठुओं द्वारा किसानों पर अमानवीय अत्याचार होने का वर्णन है, यथार्थवादी है, जब कि अन्तिम भाग उनके जीवन के परिवर्तन की कहानी कहता है। यह सच है कि प्रेमचन्द जीवन की व्याख्या और परिवर्तन में विश्वास रखते हैं, लेकिन परिवर्तन इतना आक-

स्मिक होता है कि उस पर विश्वास नहीं होता। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, उपन्यास का अन्त उस बीज का स्वाभाविक विकास नहीं है, जो कहानी के आरम्भ में बोया गया है।

'प्रेमाश्रम' में उस सामन्ती संसार का वर्णन है, जो नवीन आर्थिक शक्तियों के प्रभाव से धीरे-धीरे पूँजीवादी समाज में बदल रहा है। बड़े और छोटे ज़मींदार अपने को नये वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए आभिजात्य को ग्रहण करते जा रहे हैं। प्रभाशंकर सामन्ती समाज के प्राचीन रूप की याद दिलाता है। ज्ञानशंकर इस वर्ग का आधुनिक रूप है। पहला प्राचीन सभ्यता के स्वप्नों में खोया है, दूसरा पूँजीवादी सभ्यता से प्रभावित है। उनके पुरखों का घर नाशोन्मुख व्यवस्था का प्रतीक है। वह जर्जर अवस्था में है, जिसकी कि मरम्मत भी नहीं हो सकती। प्रभाशंकर इसे प्यार करता है, ज्ञानशंकर इसे दुबारा बनवाने की इच्छा प्रकट करता है। दोनों में संघर्ष स्वाभाविक है। चाचा मर गया है, वह नष्ट होती हुई व्यवस्था से सम्बन्ध रखता था। भतीजा जीने का निश्चय कर चुका है, वह अपना सम्बन्ध उठते हुए पूँजीवाद से स्थापित करता है। अपनी आमदनी बढ़ाने का सीधा तरीका उसे लगान की दर बढ़ाना दिखाई देता है। अपने स्वार्थ के कारण वह शोषण को बन्द करने में कोई सहायता नहीं कर सकता। प्रेमचन्द ने इस वृद्ध ज़मींदार का अत्यन्त स्पष्ट और सहानुभूतिपूर्ण चित्र खींचा है। प्रभाशंकर दया और करुणा का पात्र हो जाता है। वह अच्छे खाद्यपदार्थों के लिए, जिन्हें वह जुटा नहीं सकता, अपनी गहरी उत्सुकता दिखाकर पाठकों की सहानुभूति को जागृत कर देता है। वह वस्तुतः ऐसा सहृदय व्यक्ति है, जिसने कभी रुपये की चिन्ता नहीं की। ज्ञानशंकर का चरित्र वर्तमान सभ्यता की व्यंग्यपूर्ण आलोचना है। उसका जीवन ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट और लोभ-लालच से पूर्ण है। उसने दोनों लोकों के सुख का प्रबन्ध कर लिया है। वह अफ़सरों और किसानों में समान रूप से लोकप्रिय है। वह सारे कार्य अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर करता है, जो

कि वर्तमान सभ्यता की सबसे कठिन पहेली है। वह किसानों का शोषण करता है, अपने ससुर की हत्या का प्रयत्न करता है, अपने चाचा को ठगता है, अपने भाई की जायदाद को हड़पने के लिए उसके खिलाफ़ षड्यन्त्र करता है और अपनी विधवा साली को फँसाता है। इन कार्यों के लिए वह अकेला ही गर्व कर सकता है। यदि उसका स्वार्थ-साधन होता हो तो वह घृणित-से-घृणित कार्य कर सकता है। दूसरे आदमियों के साथ वह जो चालें चलता है और जो धोखेबाज़ी करता है, उन्हें वह खूब जानता है। अपने उगते हुए भाग्य-सितारे को देखकर वह कहता है—"मैं अपनी सफलता का श्रेय अथक प्रयत्नों को नहीं देता। यह समझना मूर्खता होगी कि यह मेरे कार्यों का फल है। यदि दैवी सहायता न होती तो मैं बाज़ी हार गया होता।" प्रेमचन्द ने अपने पात्र को व्यंग्य का साधन बनाया है और उसे बुरे-से-बुरे रूप में चित्रित किया है। उन्होंने इस बात को अच्छी तरह दिखाया है कि नये जमींदार की उन्नति किस प्रकार किसानों की अवनति पर निर्भर है। लेकिन समस्त सामन्ती समाज के ढाँचे को उनकी विद्रोह-भावना ललकारती-सी जान पड़ती है। किसान युवक बलराज मालिकों के खिलाफ़ विद्रोह की भावना का प्रतिरूप है। वह अपने पिता को निम्नलिखित शब्दों में सम्बोधित करता है—"मैं क्यों नहीं बोलूँ? तुम हमारे साथ केवल कुछ ही दिनों के लिए हो। चोट तो हमें ही सहनी है। जमींदार कोई राजा नहीं है जो हमारे ऊपर मनमाने अत्याचार करता रहे! आज तो राजा तक को इतना अधिकार नहीं है।" ज्ञानशंकर की सफलता उसकी व्यक्तिगत सफलता नहीं है, बल्कि उसका श्रेय समस्त नौकरशाही के प्रयत्नों को है।

उसका ससुर कमलानन्द भी उसी थैली का चट्टा-बट्टा है। वह ज़मींदारों का एक विशेष प्रकार का प्रतिनिधि है। जैसा कि डॉक्टर रामविलास शर्मा ने प्रेमचन्द पर लिखी अपनी पुस्तक में बताया है, उसके जीवन की पहली विशेषता उसका 'धार्मिक' होना है। धर्म के प्रति

उसकी रुचि उसे जायदाद के साथ ही अपने पुरखों से मिली है। वह प्रतिवर्ष यज्ञ करता है परन्तु मजदूरों से विना कुछ दिये ही काम कराता है। वह एक आना रोज की हमेशा से मिलती रहने वाली मजदूरी देने के लिए तैयार है और उन्हें इस पर काम करना ही चाहिए। सरकारी अफ़सर और उसके दोस्त उत्सव में भाग लेते हैं और पुण्य-कार्य में हाथ बँटाते हैं। रायसाहब ने स्वतन्त्रता के आन्दोलन में भी क्रियात्मक भाग लिया है। उन्होंने जेल जाकर कम-से-कम लोगों की सहानुभूति तो प्राप्त कर ही ली है। उन्होंने किसानों का भी विश्वास प्राप्त कर लिया है। वह शोषण के पुराने तरीकों में विश्वास नहीं करते और शोषण के नये और पुराने रूपों के बीच के अन्तर को स्पष्ट करते हैं। उनके पिता किसानों के सुख-दुख में सम्मिलित होकर उनसे व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क रखते थे और जब तक वे उनका आदर करते थे, शादी और ग़मी में जरूरतमन्दों की रुपये-पैसे से सहायता भी करते थे। उनका आधुनिक रूप न चापलूसी से पिघलता है और न सम्मान की भावना से। वह जानता है कि समाजवाद के सम्बन्ध में सफ़ाई से बातें कैसे की जाती हैं। यद्यपि वह निर्दयतापूर्वक किसानों का शोषण करता है तथापि पूँजीवाद की निन्दा करता हुआ कहता है—"दूसरों के परिश्रम पर किसी को भी मोटे होने का अधिकार नहीं है, ऐसी समाज-व्यवस्था जिसमें कुछ ही लोग मौज करते हैं और अधिकांश दुखी रहते हैं, कभी सुखकर नहीं हो सकती। हमारी समस्त आशाएँ नष्ट हो गई हैं। हम उन बच्चों की तरह हैं, जिन्हें चम्मच से खिलाया जाता है।" इस प्रकार रायसाहब धर्म के प्रति तीव्र उत्साह, देशभक्ति के प्रति उत्कट प्रेम और समाजवाद के प्रति गहरी अभिरुचि प्रदर्शित करते हैं। वह पूँजीवादी सभ्यता के प्रभाव की अपेक्षा सामन्तवाद के शिकार अधिक हैं। उनमें संगीत-प्रेम के साथ-साथ हाल ही में विकसित जातीय भावना का भी तीव्र रूप दिखाई देता है। वे प्राचीन साहित्य को प्यार करते हैं तो उसके साथ ही गेंद-बल्ले का खेल भी उन्हें प्रिय है।

उनकी लड़की गायत्री भी उसी वर्ग की है। वह उपन्यास में सबसे अधिक भयानक पात्र है। न तो वह अपनी वासना-तृप्ति में ही सफल है और न उसका उन्नयन ही कर पाती है। वह अपराध और प्रायश्चित की भावना से पीड़ित है। वह उदार और धार्मिक होने की चेष्टा करती है लेकिन यह जीवन उसे सन्तोष नहीं दे पाता। अन्त में वह अज्ञात रूप से मर जाती है, जिसका पता लेखक द्वारा ही चलता है। उपन्यास के अन्य नारी-पात्रों में प्रेमशंकर की पत्नी श्रद्धा पुराने विचारों की रूढ़िवादी स्त्री है, जो अपने उदार-हृदय पति के साथ ठीक से निर्वाह नहीं कर सकती। ज्ञानशंकर की पत्नी विद्या जीवन के नये दृष्टिकोण से प्रभावित है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण विशाल, उल्लासमय और बुद्धिवादी है। वह मध्य वर्ग के उपयोगितावाद और बुद्धिवाद से युक्त विद्रोही दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है।

एक दूसरे प्रकार के ज़मींदारों का नमूना वह पश्चातापग्रस्त व्यक्ति है, जो इस वर्ग का सदस्य होते हुए भी किसानों के शोषण का समर्थन नहीं करता। वह ऐसा आर्थिक कारणों से नहीं, नैतिक और मानवीय कारणों से करता है। प्रेमचन्द ने प्रेमशंकर के चरित्र में ऐसे मनुष्य की झलक दी है। उसने विदेश में खेती की वैज्ञानिक ढंग से शिक्षा प्राप्त की है। गाँव में लौटने पर वह किसानों का अगुआ बन जाता है। यद्यपि वह अपने ही लोगों द्वारा बहिष्कृत और दोषी ठहराया जाता है तथापि वह हृदय से किसानों की सेवा में लग जाता है। वह उस राष्ट्रीय आन्दोलन की उपज है, जो देश में इतना शक्तिशाली हो गया था कि जिसने सैकड़ों धनी युवकों को अपने अधिकारों को छोड़ने की प्रेरणा देकर उस पीड़ित जनता का साथ देने को मजबूर कर दिया, जिसका शोषण वे युगों से करते चले आ रहे थे। सभ्य बुद्धिवादियों ने ऐसा इसलिए किया था कि जिससे वे जनता के साथ सम्पर्क बनाए रखें और अपने को जनता से जहाँ तक हो सके वहाँ तक कम ही अलग समझें। ऐसे भले लोगों ने, जो अपराध की तीव्र भावना से पीड़ित थे, एक

सुधारक, एक परोपकारी और एक क्रान्तिकारी का कार्य किया।

'प्रेमाश्रम' में ज़मींदार स्त्री-पुरुषों के विभिन्न प्रकार के चित्र ही नहीं हैं, उसमें, जैसा कि पहले कहा गया है, सामाजिक अन्याय और आर्थिक शोषण के विरुद्ध किसानों के संघर्ष की कथा भी है। उपन्यास का आरम्भ सरकारी अफ़सरों और उनके अमलदारों के दौरे से होता है। वे गाँव के ग़रीब लोगों को चूसने वाले दल के सदस्य हैं। मनोहर, जो कि किसानों की नई चेतना का प्रतिनिधित्व करता है इस शोषण के खिलाफ़ विद्रोह करता है लेकिन नौकरशाही की चक्की की घड़-घड़ में उसकी आवाज़ खो जाती है। उसका लड़का बलराज आदर्शवादी और उत्साही है। मनोहर जीवन के उतार-चढ़ाव देखने के कारण शान्त-चित्त और यथार्थवादी है। वह वर्तमान का प्रतिनिधि है, उसका लड़का भविष्य का। समस्त सामन्ती संसार के चित्र को पूर्ण बनाने के लिए इन किसानों का समावेश आवश्यक है। लेखक ने उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ की दुहरी कथावस्तु की कला को अपनाया है। दो अलग-अलग दलों से सम्बन्धित समानान्तर चलने वाले कथासूत्रों में दो कहानियाँ ऐसे गुथी हुई हैं, जैसे बाज़ीगर के हाथों में उछलने वाली दोनों गेंदों का भाग्य एक-दूसरी से जुड़ा रहता है। प्रेमचन्द इस शक्तिशाली नाटक का अन्त इन शब्दों से करते हैं—"इस अन्याय के विरुद्ध कौन लड़ेगा?" ग़रीबों के शोषण का अन्त करने के लिए सत्याग्रह एक निरर्थक हथियार सिद्ध हो चुका है। दमन की ताकतों द्वारा पैदा की गई परिस्थिति का सामना न कर सकने के कारण लेखक एक ऐसी आदर्श और कल्पनामयी सृष्टि का निर्माण करता है, जिसमें किसान सुखी और सम्पन्न दिखाई देते हैं। यह यथार्थ से पलायन है। हाजीपुर एक आदर्श गाँव में परिणत हो जाता है, जो ख़ुशहाली और सुख में डूबा हुआ है। प्रेमचन्द की इच्छा देहात को हँसते हुए देखने की अधिक है, वे इस गाँव का पूर्ण वर्णन नहीं करते। सामूहिक खेती के सिद्धान्त से प्रेरित प्रेमशंकर इस गाँव को यह रूप देता है, यहाँ तक कि उसकी ग़रीबों की

सेवा के कारण पीड़ा और कठिनाइयों से परेशान लखनपुर भी उन्नत हो जाता है। वह अपने हिस्से की जायदाद, अपनी रूढ़िवादी पत्नी और अपने चाचा के लड़के तक को ग़रीबों की सेवा के लिए छोड़ देता है। उसका व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक है। उसके जादुई स्पर्श से मामूली-से-मामूली धातु भी सोना हो जाती है। मायाशंकर एक आदर्श ज़मींदार हो जाता है, सुक्खू चौधरी त्याग का जीवन बिताने लगता है, ज्वालासिंह सरकारी नौकरी छोड़ देता है, इरफ़ान अली वकालत को लात मार देता है, डॉक्टर प्रियानाथ जनता का डॉक्टर बन जाता है। यह सब उसके व्यक्तित्व के दैवी प्रभाव से ही होता है। कठोर-हृदय दयाशंकर उसी के प्रभाव से एक कोमल और करुण व्यक्ति बन जाता है। श्रद्धा अन्त में अपने पति से समझौता कर लेती है। इस सामूहिक परिवर्तन से बचे हुए अन्त में दो ही पात्र रह जाते हैं—ज्ञानशंकर और गायत्री। लेखक ने इन पात्रों को, जो आनन्द और सुधार के बीच बाधा बनाकर आ सकते थे, अलग करके अपने पथ से हटा दिया है। इसे कृषि-सम्बन्धी समस्याओं का हल भी कहा जा सकता है।

इन सामन्ती संसार के प्राणियों के साथ ही कुछ ऐसे भी ज़मींदार हैं, जो धर्म के नाम पर जनता का शोषण करते हैं। ईश्वर उनकी और उनके निहित स्वार्थों की रक्षा करता है। धर्म के ठेकेदार जनता के अज्ञान से लाभ उठाते हैं। वे विलास में डूबे रहते हैं, जबकि उनके भक्त उनके लिए इस आशा से पसीना बहाते हैं कि उन्हें स्वर्ग मिलेगा। 'सेवासदन' का महन्त रामदास इस वर्ग का विशेष प्रकार का प्रतिनिधि है। प्रेमचन्द ने अपने इस पात्र के चित्रण में कला की पराकाष्ठा कर दी है। प्रेमचन्द ने निर्दयता के साथ उसकी चालों और धोखेबाज़ियों, गुण्डागीरियों और बदमाशियों तथा उसकी लूटमार और शोषण का भण्डाफोड़ किया है। वह अपने किसानों को उधार दिये हुए रुपये पर बेहद सूद लेता है। वह स्वयं समाज के लिए जोंक है। श्री बाँकेविहारी जी उसके देवता हैं, जिनकी वह मन्दिर में पूजा करता है। उनसे उनका

घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह प्रत्येक कार्य उन्हीं की आज्ञा से करता है, यहाँ तक कि डिग्री भी उन्हीं के द्वारा कराता है। ग़रीब और अपढ़ जनता के पास इसके सिवाय कोई चारा नहीं है कि वह चुपचाप दैवी आज्ञा को मान ले। यदि वह ऐसा नहीं करती तो उसे ईश्वरीय प्रकोप का सामना करना पड़ेगा। 'कर्मभूमि' का महन्त आसाराम भी इसी वर्ग का प्राणी है। आर्थिक तंगी के ज़माने में वह अपने किसानों से अपना हिस्सा माँगता है। भोला चौधरी, जो उसके क्रोध और क्रूरता का सबसे बड़ा शिकार था, उसके निर्दय व्यवहार के कारण ही मृत्यु की गोद में सो जाता है।

समाज की सामन्ती व्यवस्था में इस प्रकार ज़मींदारों के अनेक प्रकार हैं, जिनको स्थूल रूप से दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। एक तो वे जो प्राचीन सामन्ती प्रथा से चिपटे हैं और जो अवनति की ओर जा रहे हैं और दूसरे वे जिन्होंने पूँजीवादी व्यवस्था से समझौता कर लिया है और जो समृद्ध होते जा रहे हैं। बदलती हुई समाज-व्यवस्था के अनुकूल अपने को ढालने के कारण उन्होंने एक नये प्रकार का जीवन आरम्भ किया है। उन्होंने धर्म, राष्ट्रीयता और समाजवाद की, जिसकी वे केवल बातें कर सकते हैं, सहायता से अपनी स्थिति को मज़बूत कर लिया है। रायसाहब कमलानन्द इस दूसरे वर्ग के उदाहरण हैं। जिन उपन्यासों में ग़रीब जनता के शोषण का वर्णन है, उन सबमें ऐसे ज़मींदार बिखरे हुए हैं, लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में उनको विशेष रूप से केन्द्रित कर दिया गया है। भेड़ के रूप में अपने को छिपाने वाले इन भेड़ियों का प्रेमचन्द ने खूब भण्डाफोड़ किया है। सड़ी-गली और कुरूप सामन्ती दुनिया की बुराइयाँ दिखाने में प्रेमचन्द ने अपनी आत्मा की समस्त शक्ति लगा दी है और सामाजिक कल्याण के लिए इसका जितनी जल्दी खात्मा हो उतना ही अच्छा है। उनकी कला का उद्देश्य शुद्ध रूप से सामाजिक है, क्योंकि वह ज़मींदरों के शोषण के विरुद्ध जनता की चेतना को जागृत करती है।

'प्रेमाश्रम' उपन्यासकार के नाते प्रेमचन्द की कीर्ति का विस्तार करता है। जैसा कि आरम्भ में कहा जा चुका है, इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं—इसकी गठी हुई शैली, इसके मार्मिक, मानसिक और सामाजिक संघर्ष तथा पश्चिमी सभ्यता से प्रभावित ज़मींदारों के साथ समस्त सामन्तशाही का पूर्ण और यथातथ्य चित्रण। यह भारतीय साहित्य में पहला उपन्यास है, जो ग्राम्य-जीवन और उसकी आधारभूत समस्याओं का वर्णन करता है। अब तक के उपन्यासों में मध्य वर्ग की सामाजिक समस्याओं का ही समावेश था। शरच्चन्द्र अभी तक मैदान में नहीं आये थे। प्रेमचन्द भारतीय साहित्य में नवीन ढंग के कथा-साहित्य की सृष्टि करने वाले अग्रदूत थे। इसीलिए 'प्रेमाश्रम' भारतीय कथा-साहित्य के इतिहास की युग-सूचक कृति कही जा सकती है।

: ५ :

उद्योगपति

प्रेमचन्द सामाजिक अन्याय और नैतिक पतन के कारणों पर विचार करते हुए पारस्परिक सहयोग पर आधारित ग्राम्य-व्यवस्था के छिन्न-भिन्न होने और प्रतियोगिता, लोभ और स्वार्थ पर आधारित औद्योगीकरण के विकास का वर्णन करते हैं। उन्होंने इसका अनुभव कर लिया है कि सभ्यता सामाजिक व्यवस्था के स्वभाव और प्रकार पर निर्भर है। विभिन्न वर्गों में जो मौलिक-सामाजिक सम्बन्ध हैं, उनको दृष्टि में रखकर ही प्रेमचन्द ने समाज की बुराइयों का चित्रण किया है। सामाजिक समस्याओं पर आरम्भ में उन्होंने एक सुधारक की दृष्टि से विचार किया, परन्तु पीछे चलकर उन्होंने क्रान्तिकारी दृष्टिकोण को अपना लिया। उदाहरण के लिए सुमन के पतन का कारण कुछ अंशों में सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ हैं, जो अनेक स्त्रियों के नैतिक पतन की उत्तरदायी होती हैं। प्रेमचन्द ने उसकी निन्दा नहीं की है। इसके विपरीत वह कहते हैं—"हमें वेश्याओं को पतित नारियाँ कहने का कोई अधिकार नहीं है। उनको ऐसा समझना हमारी नीचता है। हम जैसे रात-दिन रिश्वत लेने वाले, बेहद सूद खाने वाले, ग़रीबों का खून चूसने वाले और असहायों का गला काटने वाले समाज के किसी भी अंग को घृणा की दृष्टि से नहीं देख सकते। हम सबसे बड़े पापी हैं, सबसे बड़े अपराधी हैं, और सबसे बड़े नीच हैं। हम जो अपने को शिक्षित, सभ्य और सुसंस्कृत कहते हैं ऐसा करके उनके साथ अन्याय करते हैं। वेश्यावृत्ति के बढ़ने का कारण हमारा संरक्षण है।" प्रेमचन्द

मध्यवर्गी जनता का पर्दाफाश करते हैं और उसके भद्दे और भयंकर रूप को हमारे सामने रखते हैं। पुरातन सामन्ती प्रथा मृतप्राय है। गौरवमय अतीत पर केवल दो-चार आँसू बहाए जा सकते हैं, परन्तु फिर भी वे उसके पुनरुद्धार में सहायक नहीं हो सकते। नई सभ्यता ने व्यापारियों और उद्योगपतियों के निहित स्वार्थों को प्रोत्साहन देकर प्राचीन ग्राम्य-व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर दिया है।

'*रंगभूमि*' में इस मौलिक संघर्ष को अत्यन्त विस्तृत और व्यापक रूप में चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द ने स्वयं को देहात के भीतर प्रतिष्ठित किया है। जैसे पहले उपन्यास में लखनपुर सामन्ती शोषण का गढ़ है वैसे ही इस उपन्यास में पाण्डेपुर औद्योगिक शोषण का केन्द्र है। दोनों ही उपन्यासों में दमन और संघर्ष के युग की मरती हुई सामन्ती प्रथा और विकसित होती हुई औद्योगिक व्यवस्था का चित्र है। प्राचीन ग्राम्य-व्यवस्था का और नई पूँजीवादी ताकतों के पारस्परिक संघर्ष का केन्द्र पाण्डेपुर है। यद्यपि यह गाँव कर्म और संघर्ष का केन्द्र है तथापि प्रेमचन्द ने संघर्ष को एक गाँव तक ही सीमित नहीं रखा है। उन्होंने मौलिक मतभेद को भी दूर करने की चेष्टा नहीं की है। उपन्यास बताता है कि प्रेमचन्द का जीवन के प्रति क्या दृष्टि-कोण है और इस विशाल जीवन-नाटक में मनुष्य का क्या महत्त्व है। जीवन एक खेल है, जिसमें खिलाड़ियों को कुछ नैतिक सिद्धान्तों को दृष्टि में रखकर थमा लेना चाहिए। उपन्यास का प्रमुख पात्र एक अन्धा भिखारी—सूरदास है, जिसे वह जीवन के खेल का आदर्श खिलाड़ी समझता है। दूसरे खिलाड़ियों में अनेक स्त्री और पुरुष हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार की विचारधाराएँ रखते हैं। उनमें किसान और राजकुमार हैं, पूँजीपति और मज़दूर हैं, देशभक्त और गद्दार हैं। रंगमंच की स्थापना बड़े पैमाने पर तीन भिन्न-भिन्न स्थानों पर की गई है। पाण्डे-पुर किसानों का गाँव है, काशी मध्य वर्ग के लोगों का निवास-स्थान है, जसवन्तनगर ज़मींदारों और उनके वर्ग के लोगों की जागीर है। घटनाओं

का प्रमुख केन्द्र पाण्डेपुर है, काशी उसके संघर्ष से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, जसवन्तनगर अप्रत्यक्ष रूप से उपन्यास के पात्रों पर प्रभाव डालता है। सारी कथा को प्रेरणा और प्रोत्साहन पुरातन ग्राम्य-व्यवस्था पर पड़े हुए पूँजीवादी सभ्यता के तीव्र प्रभाव द्वारा मिलते हैं। प्रेमचन्द ने औद्योगीकरण के दुष्परिणामों का दिग्दर्शन कराया है। जैसे 'प्रेमाश्रम' सामन्ती जीवन का महाकाव्य है वैसे ही 'रंगभूमि' औद्योगिक सभ्यता का, जिसने कि गाँव के सामाजिक और आर्थिक सम्बन्धों को नष्ट करना आरम्भ कर दिया था। इसने प्राचीन सभ्यता के आधार को हेय ठहराना आरम्भ कर दिया था। ज़मींदारों और किसानों के बीच का प्रत्यक्ष सम्पर्क अब पूँजीपतियों और मज़दूरों के बीच के अप्रत्यक्ष और बाज़ारू सम्बन्धों में परिणत होना आरम्भ हो गया था। नई सभ्यता से प्रभावित ज्ञानशङ्कर ने ज़मींदार और किसानों के बीच के बन्धनों को पहले ही जड़ से उखाड़ फेंका था। वह सामन्तवाद से पूँजीवाद के बीच की स्थिति का द्योतक है। प्रेमचन्द पुरातन सामन्ती व्यवस्था को अधिक रुचि के साथ चित्रित करते हैं। उनकी दृष्टि में उसमें वर्तमान पूँजीवादी व्यवस्था कहीं अधिक मानवीय तत्त्व तक विद्यमान है और वह इतनी अधिक क्रूर भी नहीं है। जटाशंकर और प्रभाशंकर पश्चिमी सभ्यता की उपज न होकर ज़मींदारी प्रथा के अधिक प्रतीक हैं। आर्थिक प्रणाली को अधिक महत्त्व न देने के कारण प्रेमचन्द अलग-अलग चरित्रों पर विशेष ज़ोर देते हैं, शोषण की कुप्रथा पर नहीं, जो कि निरर्थक और निकम्मी सिद्ध हो चुकी है।

जॉन सेवक औद्योगिक व्यवस्था का प्रतिनिधि है। वह एक बंजर ज़मीन के ऊपर अपनी सिगरेट की फैक्टरी खड़ी करना चाहता है। यह ज़मीन अन्धे भिखारी की है और वह उसे कई कारणों से बेचना नहीं चाहता। सूरदास अपने पुरखों की ज़मीन को बहुत ज्यादा प्यार करता है। वह इसके ऊपर एक स्मारक बनवाकर उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाना चाहता है। वह गाँव के पशुओं के लिए चरागाह का भी काम

देती है। फिर सिगरेट की फैक्टरी से दूसरी कितनी ही बुराइयाँ फैलेंगी। वह गाँव के जीवन को दुखी बना देंगी। दूसरी ओर जॉन सेवक इस गाँव के लोगों को मनाने के लिए अनेक दलीलें देता है और कहता है कि यदि वे अन्धे को ज़मीन बेचने पर राजी कर लेंगे तो उन्हें लाभ होगा। अधिकारियों की सारी शक्ति जॉन सेवक का पक्ष लेती है। गाँव के लोग भी उसे समझाने-बुझाने की चेष्टा करते हैं। सूरदास चट्टान की तरह दृढ़ है। वह एक सच्चा सत्याग्रही है और उसका चरित्र १९२१–२२ के राजनीतिक आन्दोलनों के असहयोगी का है। सूरदास की कथा गाँवों के औद्योगीकरण के विरुद्ध एक चुनौती है। उसका साथ देने वाले—पुजारी दयागिर, अहीर बजरंगी, उसकी पत्नी जमुना, उसका बेटा घीसू, कलार भैरों, खोंचे वाला जगधर और पानवाला ठाकुरदीन हैं। उसने लोगों से भीख माँग-माँगकर पाँच सौ रुपये जोड़े हैं। इन पात्रों के चित्रण में प्रेमचन्द ने कमाल कर दिया है। सूरदास की कहानी यथार्थवाद से पूर्ण है। नायक भयंकर विपदाओं से लड़कर अनेक लड़ाइयाँ जीतता है। वह अपनी ज़मीन के बेचने का विरोध करता है, लेकिन वह उससे ज़बर्दस्ती छीन ली जाती है। यह उसकी पहली नैतिक विजय है। वह अपने पड़ोसी की स्त्री को अपने यहाँ इसलिए शरण देता है कि पति उसको बहुत पीटता है। इसलिए लोग उसे भला-बुरा कहते हैं। वह अपने व्यवहार से निन्दकों का मुँह बन्द कर देता है। यह उसकी दूसरी नैतिक विजय है। जीवन-संग्राम के इस आदर्श योद्धा की नैतिक विजयों को प्रेमचन्द ने विशेष रूप से चित्रित किया है। ग़रीबों की झोंपड़ियाँ अधिकारियों द्वारा उन मिल-मजदूरों के लिए खाली करवा ली जाती हैं, जो गाँव में आकर ठहरेंगे। सूरदास अपनी झोंपड़ी खाली करने से इन्कार कर देता है। इससे संकट पैदा हो जाता है। पुलिस बुलाई जाती है, विरोधी भीड़ पर गोलियाँ बरसाई जाती हैं और समाज की नवीन औद्योगिक व्यवस्था के कारण सारा गाँव छिन्न-भिन्न और नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। छोटे-छोटे बच्चे मज़दूर

हो जाते हैं। घीसू और मिथिया पतित मज़दूर वर्ग का अंग हो जाते हैं। वे सुभागी के घर में बलात्कार की दुर्भावना से ज़बर्दस्ती घुस जाते हैं। सूरदास उसके सतीत्व की रक्षा करता है और उन्हें गिरफ्तार करवा देता है। ये और अन्य दूसरी घटनाएँ उद्योगपतियों, पुलिस और सरकारी अफ़सरों के विरुद्ध नायक के संघर्ष की कहानी कहती हैं।

विनय और सोफ़िया की कहानी भी इसी के साथ-साथ चलती है, लेकिन यह प्रधान कथा से कम महत्त्व रखती है। यह प्रधानतः प्रेम की कहानी है। सोफ़िया एक ईसाई लड़की है, जो धार्मिक अन्धविश्वासों का विरोध करती है। उसकी माँ कट्टर धार्मिक है और उसकी स्वतन्त्र भावना को स्वीकार नहीं करती। एक दिन सोफ़िया गिरजे में जाने से इन्कार करती है। इससे उसकी माँ इतनी उत्तेजित हो जाती है कि शान्ति और एकता के लिए वह घर छोड़ने को बाध्य हो जाती है। इस पात्र से छुटकारा पाने के लिए प्रेमचन्द एक चकित करने वाली और नाटकीय विधि सोच निकालते हैं। एक घर में आग लग जाती है। सोफ़िया आग बुझाने में सहायता करती है। संयोगवश उसका कोमल शरीर झुलस जाता है। इस घटना के बाद वह एक हिन्दू परिवार में शरण पाती है। विनय एक युवक है, जो समाज-सेवा और त्याग के आदर्श का पालन करता है। वे एक-दूसरे को हृदय से चाहने लगते हैं। यही नहीं, वे एक-दूसरे के प्रेम में फँस जाते हैं। लड़के की माँ पुराणपन्थी है। वह विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के सम्पर्क को सहन नहीं कर सकती। युवक सामाजिक और राजनीतिक कार्य में अपने को भुलाने की चेष्टा करता है। वह कविताएँ भी लिखता है। भारतीय रियासतों के विरुद्ध विद्रोहात्मक कार्यवाहियाँ करने के अपराध में पुलिस उसे गिरफ्तार करके बन्द कर देती है। सोफ़िया उसको छुड़ाने के लिए विचित्र उपाय करती है। वह ज़िले के अफ़सर मि० क्लार्क से प्रेम-सम्बन्ध जोड़ती है। जब वह जिले के अफ़सर के हस्ताक्षरों का आज्ञा-पत्र लेकर विनय के पास पहुँचती है तो वह जेल से रिहा होने से इन्कार

कर देता है। गाँव के पुजारी नायकराम द्वारा दूसरी तरकीब सोची जाती है। वह उसके पास उसकी माँ की बीमारी और आसन्न मृत्यु की झूठी खबर ले जाता है। विनय जेल से भाग जाता है। सोफ़िया क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो जाती है। विनय रियासती अधिकारियों द्वारा किये गए दमन का अन्त करने में सफल नहीं होता। सोफ़िया आतंकवादियों और क्रान्तिकारियों के तौर-तरीकों से ऊब जाती है। अचानक वे एक रेल के डिब्बे में मिल जाते हैं। गाड़ी बनारस पहुँचती है, जहाँ पहुँचकर उन्हें पता चलता है कि उनकी शादी के बारे में पुराणपन्थी बुढ़िया का विरोध मन्द पड़ गया है। उनका ग्रन्थिबन्धन होने ही वाला है कि भाग्य उनके बीच आ खड़ा होता है। पाण्डेपुर के निर्दोष लोगों पर गोलियाँ बरसाई जाती हैं। यहीं दोनों कथाएँ एक-दूसरे को छूती हैं। विनय, जो पहले इन लोगों की आँखों में गिर गया था, भीड़ में मिलकर अपने पूर्व सम्मान को प्राप्त कर लेता है। इस प्रसंग के बाद लेखक न तो इन पात्रों को नियंत्रण में रखता है और न उनको अलग ही कर पाता है। वह ऐसे पात्रों को ठिकाने लगाने की अपनी पुरानी तरकीब काम में लाता है। विनय आत्महत्या कर लेता है, सोफ़िया भी अपने जीवन का अन्त करने के लिए नदी में कूद पड़ती है। इस प्रकार प्रेम की यह कहानी आत्महत्या और असफलता में समाप्त हो जाती है। सूरदास गोली से बुरी तरह घायल हो जाता है और अस्पताल में जाकर मर जाता है। वह अपनी मृत्यु में भी नैतिक दृष्टि से विजेता चित्रित किया गया है। उसकी शवयात्रा में मित्र और शत्रु दोनों सम्मिलित होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की राय में उसने अपना जीवन स्वाभिमान के साथ बिताया था। विनय और सोफ़िया की कहानी उस आध्यात्मिक प्रेम की प्रतीक है, जिसमें शारीरिक वासना भस्म हो जाती है। प्रेमचन्द जीवन में असत् शक्तियों पर सत् शक्तियों की विजय दिखाना चाहते हैं।

जसवन्तनगर बड़े जमींदारों और राजे-महाराजों का केन्द्र है। यह

विनय, सोफ़िया और आतंकवादियों के लिए कर्मक्षेत्र प्रस्तुत करता है। यह उपन्यास की छोटी कथा है, लेकिन इससे इस बात का पता चलता है कि राजा अपनी प्रजा पर किस प्रकार अत्याचार करते हैं। भारतीय नरेशों को पोलिटिकल एजेण्ट के हाथ की कठपुतली दिखाया गया है। रियासती जनता के नेता अधिकारियों के विरुद्ध बगावत करते हैं, लेकिन उनकी कोशिशें बेकार हो जाती हैं। प्रेमचन्द ने आतंकवादियों की ध्वंसात्मक कार्यवाहियों को स्पष्ट रूप से चित्रित नहीं किया, प्रत्युत उन्होंने उनके ऊपर एक रहस्यमय आवरण डाल दिया है। इस कथा का समावेश पाठक की अद्भुत के प्रति जिज्ञासा की वृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए किया गया है, अन्यथा इसका उपन्यास के विषय से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है। ताहिर अली की कहानी मध्यवर्गीय परिवार की अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उठाई गई कठिनाइयों का दिग्दर्शन कराने के लिए रखी गई है। प्रेमचन्द ऐसे परिवारों के जीवन से खूब परिचित हैं, इसलिए उन्होंने विस्तार के साथ इसका वर्णन किया है कि कैसे अपनी छोटी-सी आमदनी से वे अपनी जरूरतों को पूरा करते हैं। लेखक ने निम्न-मध्य वर्ग की स्त्रियों के मनोविज्ञान की ओर विशेष रूप से ध्यान दिया है। ताहिरअली स्वयं एक जूते की दुकान में मैनेजर है। वह पाण्डेपुर और पड़ोस के गाँवों के जूते बनाने वालों को चमड़ा बेचता है। जॉन सेवक इस दुकान का मालिक है। इस प्रकार लेखक ने विभिन्न सामाजिक दलों के चरित्रों का ढेर लगा दिया है। उसने कथा को बढ़ाने के लिए उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ की टेकनीक का उपयोग किया है। चार समानान्तर चलने वाले कथासूत्र, जो चार अलग-अलग आदमियों के समूहों से सम्बन्ध रखते हैं, परस्पर कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं रखते।

प्रेमचन्द ने दमन और संघर्ष के युग के भारतीय समाज के जीवन की पूरी-पूरी झलक देने के लिए एक विशालपट चुना है। उन्होंने उपन्यास को उच्च कोटि और सार्वजनिक प्रभाव का बनाने के लिए

उसमें विभिन्न धर्मों के स्त्री और पुरुषों को एकत्र किया है। जॉन सेवक ईसाई है, विनय हिन्दू है, ताहिर अली मुसलमान है और सूरदास जन्म से हिन्दू होने पर भी गरीब है। वे सब एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं, लेकिन विरोध और संघर्ष से जो नई परिस्थिति उत्पन्न होती है उसका परिणाम कारखानों का शोर, मज़दूरों की हलचल और औद्योगिकता की विजय है। पूँजीपति विजयी होता है और निर्धन नष्ट होता है। वैधानिक तरीके से राष्ट्रीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने में विश्वास रखने वाला गांगुली किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। उसका आशावाद आत्म-वंचना में परिणत हो जाता है। यह असेम्बली से त्यागपत्र दे देता है और रचनात्मक कार्य में जुट जाता है। वह उन लोगों का प्रतिनिधि है, जिन्होंने असहयोग-आन्दोलन में असेम्बलियों का बहिष्कार किया था। जाह्नवी और इन्दु ने पहले ही राष्ट्र-सेवा का व्रत ले लिया है। भरतसिंह का परम्परागत धर्म में कोई विश्वास नहीं रहा। वह धर्म, समाज-सेवा, देश-भक्ति और मानवतावाद में विश्वास खोने के बाद सनकी हो जाता है। वह विलासी जीवन बिताने का निश्चय करता है और अन्त तक विलासी रहता है। भरतसिंह उन राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं में से है, जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन की असफलता के बाद अपने को अशक्त और किंकर्तव्यविमूढ़ अनुभव किया था। इन सब पात्रों की अपेक्षा सूरदास अधिक ऊँचे धरातल पर खड़ा है। सत्य और अहिंसा में उसका विश्वास मृत्यु-पर्यन्त अडिग बना रहता है। वह सच्चे खिलाड़ी की भाँति अपना पार्ट अदा करता है और यही खिलाड़ी की भावना है, जिसे लेखक ने अपने इस पात्र द्वारा आदर्श का रूप देने की चेष्टा की है। वह जीवन के खेल में अनेक बार पराजित होता है, लेकिन अपने विरोधी के प्रति किसी दुर्भावना को अपने हृदय में स्थान नहीं देता। सोफ़िया, जाह्नवी, इन्दु और यहाँ तक कि विनय भी उसकी समता में नहीं ठहर पाते। सच तो यह है कि विनय जीवन के निम्न मार्ग पर बढ़ता दीखता है। यदि उसने अपने जीवन का अन्त न किया होता तो

वह एक देशद्रोही होकर मरा होता। उसके भीतर प्रेम और कर्तव्य का द्वन्द्व चलता है। जैसे ही वह प्रेम तक पहुँचता है वैसे ही गड्ढे में गिर जाता है, और उसका प्रेम भी निराशा में जाकर समाप्त होता है। सोफ़िया का चरित्र त्याग और आदर्श से पूर्ण है। जाह्नवी एक ऐसी आदर्श माता है, जो अपने पुत्र को देश-भक्ति की बलिवेदी पर चढ़ा देती है। उसकी मृत्यु के बाद वह स्वयं मैदान में आती है और उसकी लड़ाई लड़ती है। उपन्यास में विभिन्न दलों और वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले दूसरे अनेक पात्रों का समावेश किया गया है। रंगभूमि का पट अत्यन्त विस्तृत है और उसमें परस्पर-विरोधी वर्गों के सामाजिक पात्रों को एकत्रित किया गया है। इसके साथ ही उनका चित्र अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि और शक्ति के साथ किया गया है। जहाँ-कहीं भी हम उपन्यास को पढ़ते हैं, वह हमें जीवन-शक्ति से पूर्ण दिखाई देता है। औद्योगीकरण के विकास की स्थिति का जितना स्पष्ट दर्शन राजनीतिक विप्लव के समय इस उपन्यास में होता है, उतना अन्यत्र नहीं।

उपन्यास की मूल कथा में दो सभ्यताओं का संघर्ष है। एक तो लाभ और प्रतियोगिता पर आधारित औद्योगीकरण की नई ताक़तों का प्रतिनिधित्व करती है और दूसरी पारस्परिक सहयोग पर आधारित जीवन के पुराने ढंग का। 'रंगभूमि' देहाती ज़िन्दगी के नाश की कहानी है। यह उसके नैतिक और आर्थिक पतन की लम्बी गाथा है, जिसका उत्तरदायित्व उस पश्चिमी सभ्यता पर है, जिसे पूँजीवादी सभ्यता भी कहते हैं। जॉन सेवक उत्पादन की नई ताकतों का प्रतिनिधि है, जब कि सूरदास प्राचीन ग्राम्य-व्यवस्था का प्रतीक है। अन्धा भिखारी अपनी सम्पूर्ण आत्म-शक्ति से उस जमीन में सिगरेट की फैक्टरी बनाने का विरोध करता है, जिसे उसने अपने पूर्वजों से विरासत में पाया है। वह साहस, सहनशक्ति और विरक्ति का प्रतिरूप है। वह किसान की-सी भोली-भाली प्रकृति का है। उसका रूढ़िवादी और धीरे बदलने वाला मस्तिष्क, उसकी झगड़ालू प्रकृति, और उसकी

सहयोग तथा संगठन की भावना सभी कुछ किसानों से मिलती-जुलती हैं। अपनी समस्त अच्छाइयों और बुराइयों के साथ वह अपने जीवन को निजी ढंग से बिताता है। हम जानते हैं कि ज़मीन उससे ज़बर्दस्ती छीनी जाती है। फैक्टरी खोलने वाले ग़रीब देहातियों को सब प्रकार के प्रलोभन देते हैं—फैक्टरी खुलने से उनका कारोबार बढ़ेगा और इससे उनके जीवन का स्तर ऊँचा होगा। सूरदास लोगों को चेतावनी देते हुए इसके दुष्परिणामों की ओर संकेत करता है—मज़दूर-वर्ग ग्राम्य-जीवन को अस्त-व्यस्त कर देंगे। उसकी भविष्यवाणी सत्य प्रमाणित होती है। लेखक औद्योगीकरण की बुराइयों का भयानक चित्र प्रस्तुत करता है। वह औद्योगिक युग से पहले की सभ्यता के प्रति तीव्र अनुराग प्रकट करता है। वह देखता है कि प्राचीन मान्यताएँ तो पूर्णरूपेण नष्ट हो गई हैं, लेकिन उनके स्थान पर कोई अच्छी वस्तु नहीं आई है। इसके कारण उसका ध्यान आसपास की घटनाओं की ओर जाता है और वह उन्हें गहराई से देखता है। वह आवेग और शक्ति के साथ उस नवीन सामाजिक व्यवस्था पर आक्रमण करता है, जिसका आधार जनता की दासता है, उसकी दरिद्रता और शोषण है, हिंसा और क्रूरता है, लोभ और स्वार्थ है। शिक्षा इसे बढ़ावा देती है, अदालतें इसके लिए कवच हैं और पुलिस इसकी रक्षक है। जब प्रेमचन्द पूँजीवादी वर्ग के उत्थान द्वारा किसानों के शोषण की निन्दा करते हैं तब वे एक प्रगतिशील लेखक का कार्य करते हैं, लेकिन जब वे प्राचीन सामन्ती व्यवस्था की गोद में शरण लेते हैं तब वे एक प्रतिक्रियावादी हो जाते हैं। प्राचीन सामन्ती व्यवस्था के पूँजीवादी युग से परिवर्तित होने का जो क्रान्तिकारी कार्य हुआ वही उनके साहित्य-सृजन का आधार है। जिस वर्ग ने उनकी विचारधारा का निर्माण किया वह निम्न-मध्यवर्ग है, जो सामाजिक विकास के युग में प्रगतिवादी और प्रतिक्रियावादी दोनों ही रहा है। वे जिस युग में थे वह युग क्रान्तिकारी परिवर्तनों का, सामाजिक और राजनीतिक हलचलों का और आर्थिक तथा साम्राज्य-विरोधी संघर्ष का था।

एक कलाकार और विचारक के नाते उनके दृष्टिकोण का निर्माण उस युग की मनोवृत्ति ने ही किया था।

जॉन सेवक ही ऐसा उद्योगपति नहीं है, जिसे लेखक ने हमारे लिए अपने उपन्यासों में रखा हो। अपने अन्तिम उपन्यास 'गोदान' में उसने पूँजीवादी समाज के एक और सदस्य का चित्रण किया है। चन्द्रप्रकाश खन्ना सिगरेट की फैक्टरी के स्थान में शूगर-मिल बनाते हैं। उसके जीवन में असंगतियों और अस्थिरताओं का विचित्र सम्मिश्रण है। वह राजनीतिक बन्दी रह चुका है और अपने को मज़दूरों का शुभचिन्तक समझता है। उसने जेल जाकर लोगों का विश्वास प्राप्त किया है। उसके शूगर-मिल में मज़दूरों की हड़ताल असफल हो जाती है। पुराने मज़दूरों की जगह नये मज़दूरों की भरती की जाती है। वह मज़दूरों की तकलीफ़ें सुनने को तो सदा तैयार रहता है लेकिन हिस्सेदारों के मुनाफ़े को कभी नहीं छोड़ सकता। उपन्यास में मज़दूरों की घृणित ज़िन्दगी का विस्तार से वर्णन किया गया है। औद्योगीकरण के कारण ग्राम्य-व्यवस्था बुरी तरह बिगड़ जाती है। नायक का पुत्र गोबर किसान से मज़दूर बन जाता है। वह परम्परागत जीवन की सभी विशेषताओं को खो देता है। वह प्रतियोगिता और स्वार्थ की भावना को अपना लेता है। औद्योगीकरण से मज़दूरों और बेकार किसानों की समस्याएँ हल नहीं होतीं। इसके विपरीत इससे उनका सर्वनाश हो जाता है। मज़दूरों की ज़िन्दगी के बारे में प्रेमचन्द कहते हैं—"वे गन्दी, दुर्गन्धयुक्त और टूटी-फूटी झोंपड़ियों में रहते हैं। उनको देखते ही उबकाई आती है। वे ऐसे कपड़े पहनते हैं जिनसे हम अपने जूते को साफ करना पसन्द नहीं करेंगे। वे ऐसा खाना खाते हैं जिसे हमारा कुत्ता भी नहीं खाएगा। इतना होते हुए भी पूँजीपति और उद्योगपति हिस्सेदारों को मुनाफ़ा देने के लिए उन्हें रोटी के टुकड़ों से भी वंचित कर देते हैं।" यह आधुनिक सभ्यता और समाज-व्यवस्था की बाह्य रूपरेखा है। प्रेमचन्द ने ग्रामीणों की व्यापक दरिद्रता और औद्योगिक क्षेत्रों की केन्द्रित पीड़ा का

ब्यौरेवार वर्णन किया है। दरिद्रता सामन्तवाद और पूँजीवाद की उपज है। जब वे वर्तमान समाज-व्यवस्था की बुराई करते हैं तब तो वे ठीक करते हैं, लेकिन जब वे भावी साम्राज्य की स्थापना का प्रस्ताव करते हैं तब उनकी धारणा अस्पष्ट और उनके विचार उलझे हुए होते हैं। उनका विश्वास है कि शोषक और शोषित वर्ग के बीच की खाई तभी पाटी जा सकती है, जब कि ज़मींदार और उद्योगपति अपने विशेषाधिकार छोड़ दें और उनसे बड़ी-बड़ी माँगों के पूरा करने का आग्रह न करें। अमीर अपनी सम्पत्ति छोड़ दें, बुद्धिवादी अपने अभिमान का त्याग कर दें, कलाकार जनता के लिए साहित्य-सृजन करने लगें, प्रत्येक आदमी अपने श्रम पर जीवन-यापन करे और जीवन की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति से अधिक की आशा न करे—यह उनकी केन्द्रीय भावना है। उनका विचार है कि सामाजिक समता का प्रश्न नीचे से हल न होगा, जैसा कि क्रान्तिकारी मालिकों की समस्त सम्पत्ति को ज़बर्दस्ती छीनकर करना चाहते हैं वरन् ऊपर से होगा, जब कि मालिक स्वयं स्वाभाविक रूप से कर्तव्य समझकर वैसा करेंगे। लेखक के ऊपर महात्मा गांधी की विचारधारा का गहरा प्रभाव पड़ा है। उसने सामाजिक असंगतियों के क्षेत्र में उसकी आकर्षक भावना और शक्तिशाली विचारधारा को पूर्ण रूप से आत्मसात् कर लिया है।

'रंगभूमि' में जीवन के गांधीवादी दर्शन का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस महान् उपन्यास का नायक समाज का हिंसात्मक विरोध करने के सभी उपायों का परित्याग कर देता है। एक सत्याग्रही कभी प्रहार नहीं करता, प्रत्युत स्वयं प्रहार सहता है। वह सरकार से कोई लाभ नहीं उठाता और वह उसकी छत्रछाया में धनी होने का प्रयत्न भी नहीं करता। न उसे अदालत से कोई सरोकार रहता है और न वह मशीन की बनी हुई चीज़ों का ही इस्तेमाल करता है। उसके पास सम्पत्ति नहीं होती। वह रेल या मोटर से यात्रा नहीं करता और सरकारी नौकरी भी नहीं करता। प्रेमचन्द मानवता को खूनी विद्रोह

से बचाने के लिए हिंसात्मक क्रान्ति न करके पूर्ण रूप से नैतिक क्रान्ति का समर्थन करते हैं। यह एक ऐसी क्रान्ति है, जो आत्मचेतना और वैभव के त्याग पर अवलम्बित है। लेखक सम्पत्ति की बुराई करता है, क्योंकि सब बुराइयाँ इसी से पैदा होती हैं। यही मानव के दुख का मूल है। रियासतें और सरकारें इसीके लिए युद्ध में प्रवृत्त होती हैं। धनी, व्यापारी, शिल्पकार, भूमिपति इसी के लिए कार्य करते, योजनाएँ बनाते और अपने को तथा दूसरों को तबाह करते हैं। इसी के लिए सरकारी कर्मचारी लड़ते-झगड़ते, धोखा-फरेब करते, दमन-अत्याचार का सहारा लेते और पीड़ा-सन्ताप सहते हैं। हमारी अदालतें, हमारी पुलिस, हमारी फौज, सब सम्पत्ति की रक्षा करते हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द विद्रोही और प्रतिक्रियावादी दोनों हैं—विद्रोही तो इसलिए कि उनका अनुमान ठीक है और प्रतिक्रियावादी इसलिए कि उनका उपचार काल्पनिक है। इतना होते हुए भी वह अपने युग के सबसे बड़े प्रगतिशील लेखक थे, क्योंकि उन्होंने पूँजीवाद से उत्पन्न बुराइयों की घोर निन्दा की।

: ६ :

किसान और अछूत

'*कर्मभूमि*' (१९३२) का विषय १९२९ का लगानबन्दी-आन्दोलन है। यह आर्थिक मन्दी का भयानक वर्ष था, जिसमें चीज़ों की कीमतें बेहद कम हो गई थीं। किसानों के लिए अपना लगान अदा करना मुश्किल हो गया था। ज़मींदारों ने किसानों पर सख्ती की और परिणाम-स्वरूप उन्होंने विद्रोह कर दिया। इस सार्वभौम विद्रोह और विप्लव को दबाने के लिए नौकरशाही की सारी ताकत लगा दी गई। आत्मानन्द ने, जो कि एक उग्र किसान-नेता था, किसानों से कहा कि ज़मींदारों का अस्तित्व उनकी लगान अदा करने की सद्भावना पर ही निर्भर है। दूसरा किसान-नेता अमरकान्त समझौता और मेल कराने के लिए खड़ा हुआ। वह कांग्रेसी नेताओं के उस दृष्टिकोण का प्रतिनिधि है, जो उन्होंने इस संकट-काल में बना लिया था। ज़मींदार किसान-नेताओं की अध्यक्षता में प्रतिनिधि-मण्डल से बातचीत करने को तैयार हो जाता है। एक अफ़सर के इस कथन को अमरकान्त मान लेता है कि परिस्थिति की जाँच करने, उसकी रिपोर्ट तैयार करने, रिपोर्ट पर बहस करने और उसके पश्चात् किसी निर्णय पर पहुँचने में कम-से-कम छः महीने लगेंगे। अन्त में अधिकारियों द्वारा उसे बाध्य किया जाता है कि वह आन्दोलन का शंखनाद करे। किसानों द्वारा लगानबन्दी-आन्दोलन प्रारम्भ हो जाता है।

सरकारी प्रतिनिधि सलीम मित्र के नाते उसे आन्दोलन के भयंकर परिणामों की ओर से सचेत करता है। वह कहता है कि सारा गाँव बरबाद हो जायगा, मार्शल लॉ ज़ारी कर दिया जायगा, अतिरिक्त

पुलिस गाँव में रखी जायगी, फसलें नीलाम हो जायँगी और ज़मीनें ज़ब्त कर ली जायँगी। अमरकान्त उसकी चेतावनी पर ध्यान नहीं देता और जनता को घोर संकट का सामना करना पड़ता है। किसानों के विद्रोह को दबाने की आज्ञा पाकर अधिकारियों ने जो अत्याचार किये थे उनका प्रेमचन्द ने अत्यन्त सूक्ष्मता और शक्ति के साथ भयानक चित्र खींचा है।

जैसा कि उपन्यास के नाम से स्पष्ट है, उसमें जीवन में कर्म के महत्त्व पर विचार किया गया है। पात्र कर्मशीलता में ही आँखें खोलते और आगे बढ़ते हैं। कथा एक मध्यवर्गीय परिवार के जीवन से आरम्भ होती है। लाला समरकान्त भी ऐसे ही व्यापारी और सौदागर हैं, जिन्होंने दूसरे महाजनों की ही तरह उचित-अनुचित तरीकों से धन इकट्ठा किया है। वह लोभी और मालदार हैं। उन्होंने दो शादियाँ कीं और दोनों बीबियाँ मर गईं। उनकी दोनों बीबियों से अमरकान्त और नैना ये दो ही सन्तानें हैं। अमरकान्त शिक्षा प्राप्त करता है और इसी बीच में एक साहसी, सुन्दर, स्फूर्तिमय और एकान्तसेवी बालिका से उसकी शादी हो जाती है। इस लड़की का पिता मर चुका है। वह लड़की उस पर शासन करना आरम्भ करती है। वे परस्पर कभी एकमत नहीं होते। वह सादा था और वह पाखण्डी। कुछ समय पश्चात् उसे अपनी पढ़ाई छोड़कर दुकान पर काम करने लिए बाध्य होना पड़ता है। व्यापार में उसका मन नहीं लगता। वह घर छोड़कर दूर बसे हुए एक अछूतों के गाँव में जा बसता है, जहाँ वह एक छोटी-सी पाठशाला में उन्हें पढ़ाने लगता है। इसी बीच उसकी पत्नी सुखदा अछूतों के मन्दिर-प्रवेश के लिए किये गए सत्याग्रह में प्रमुख भाग लेती है। उसके नगर के लोगों द्वारा एक दूसरा आन्दोलन मज़दूरों के लिए मकान बनाने के सम्बन्ध में छेड़ा जाता है। म्युनिसिपल कमेटी उनके प्रस्ताव को रद्द कर देती है और उसके निर्णय का विरोध करने के लिए हड़ताल की घोषणा की जाती है। सुखदा ने जीवन के दृष्टिकोण को बदल दिया है।

वह धीरे-धीरे उसकी मतानुयायी हो चली है। यह बड़ी विचित्र बात है कि लेखक ने उनके बीच भाई-बहन का सम्बन्ध स्थापित कर दिया है। वे नगर और गाँव की जनता के हित के लिए लड़ी जाने वाली लड़ाइयों में लग जाते हैं। नगर में यदि अछूतों की समस्या प्रमुख है तो गाँवों में किसानों की। भारतीय समाज में सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से कुचले हुए लोगों की लड़ाइयों की लीडरी मध्य वर्ग के हाथ में रहती है। अछूत और किसान शोषण के सबसे बड़े शिकार हैं। अमरकान्त के चरित्र का विकास संघर्ष और हलचल के बीच होता है। वह जनता की सेवा द्वारा ही अपने व्यक्तित्व को विकसित और पूर्ण बनाता है। मुन्नी का प्रसंग, जिसका सम्बन्ध दो विदेशी सिपाहियों द्वारा एक लड़की पर बलात्कार करने से है, समस्त विदेशियों के विरुद्ध घृणा पैदा करता है और जनता को जनान्दोलन के लिए तैयार करता है। इससे समरकान्त-जैसा कठोर और क्रूर साहूकार भी हिल जाता है। वह इसके लिए ईश्वर को कोसने लगता है।

अमरकान्त कानून के आधार पर टिकी हुई सरकार का विरोध करने के लिए जनता की तमाम ताकतों को इकट्ठा करता है। सुखदा हड़तालों में भाग लेती है। पुलिस उसके पूरे परिवार को गिरफ्तार कर लेती है। उसकी बहन शहीद हो जाती है और इससे सारी परिस्थिति बदल जाती है। जनता की प्रथम विजय होती है और म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा मजदूरों को बसाने की स्वीकृति दे दी जाती है। और कॉलोनी बन भी जाती है। अमरकान्त अपने प्रयत्नों को बन्द नहीं करता। वह किसानों में लगान-बन्दी आन्दोलन का सूत्रपात करता है। सरकारी अधिकारी उसे और उसके साथियों को विप्लव की भावना जगाने के अपराध में गिरफ्तार कर लेते हैं। समय पाकर जब दमन भयंकर रूप धारण कर लेता है तो सलीम परिस्थिति से ऊबकर सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे देता है और जन-सेवक बन जाता है। अहिंसक नाटक का समझौते में अन्त हो जाता है। समरकान्त दो विरोधी दलों में समझौता कराने के लिए एक समिति का

निर्माण करके मध्यस्थ का काम करता है। इस प्रकार जनता की क्रान्ति की उमंग को दबा दिया जाता है।

उपन्यास की प्रधान कथा दूसरे रूप में १९३०-३२ के सविनय अवज्ञा-भंग आन्दोलन से सम्बन्ध रखती है। अमरकान्त और उसकी पत्नी आन्दोलन के राष्ट्रीय नेता हैं। अपने उपन्यासों में विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलन को प्रतिबिम्बित करने वाला लेखक १९२९ की उस आर्थिक मन्दी को भी नहीं भूलता, जिसने भारतीय किसानों को बुरी तरह दुखी किया था। इसके कारण धरती-पुत्रों को आर्थिक मुक्ति दिलाने के लिए सारे देश में जनान्दोलन आरम्भ हो गया था। यही वह सामाजिक और राजनीतिक हलचल है, जिसके अनुभव पर इस उपन्यास की कथा-वस्तु का निर्माण और निर्वाह इतनी यथार्थवादिता और उत्साह के साथ किया गया है। यह किसानों की दरिद्रता और उत्साह का मार्मिक अध्ययन है। यह ग्राम्य-जीवन और ग्राम्य-सम्पत्ति के नाश और ध्वंस का भी ऐसा विशाल चित्र है, जिसमें भयानक दृश्यों की अधिकता है। अपनी निजी विचारधारा का प्रदर्शन करते हुए प्रेमचन्द बताते हैं कि किस प्रकार पश्चिमी सभ्यता मञ्च पर आती है और ग्राम की सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर देती है, किस प्रकार किसानों को किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया जाता है और किस प्रकार वे फिर नये ग्राम में, अपना नया घर बनाने के लिए, अपनी शक्ति को केन्द्रित कर सकते हैं।

उपन्यास के प्रमुख पात्रों के व्यक्तित्व को भव्यता प्रदान करने के लिए उपन्यास में दो छोटी-छोटी कथाएँ और रखी गई हैं। मुन्नी की घटना, जो कि एक गाँव से सम्बन्ध रखती है, प्रधान कथा के साथ इस लिए जोड़ दी गई है कि जिससे अपने को बड़ा समझने वाले गोरों के विरुद्ध घृणा पैदा की जा सके। उसे कलंकित किया जाता है और वह दोनों गोरे सिपाहियों को मार डालती है। वह अदालत में पेश होती है और वहाँ से छूट जाती है। वह इस प्रसंग को भूलने की चेष्टा करती है लेकिन भूल नहीं पाती। वह प्रायश्चित और अपराध की तीव्र भावना

के कारण अपने पति और पुत्र को प्यार करना बन्द कर देती है। वह अपने जीवन का अन्त करने का प्रयत्न करती है लेकिन आत्महत्या करने योग्य शक्ति-संचय नहीं कर पाती। अन्त में वह अपने को उसी गाँव में पाती है, जहाँ कि अमरकान्त समाज-सेवा करने के लिए गया हुआ है। वह उसकी ओर खिंचता है, लेकिन वह झिझकती है। कुछ समय पश्चात् परिस्थिति बदल जाती है। मुन्नी समाज में अपने लिए स्थान नहीं पाती। सकीना एक दूसरी लड़की है, जिसे अमरकान्त प्यार करता है। वह भी उसके प्यार का प्रतिदान देती है। प्रेमचन्द दो कारणों से उनकी शादी नहीं होने देते—एक तो दो भिन्न धर्मानुयायियों की शादी समाज-विरोधी है और दूसरे वे सामाजिक कार्य में इतने तल्लीन हैं कि उनका प्रेम जीवन के उच्चादर्श का रूप ले लेता है। उपन्यास का अन्त होते-होते कहानी और भी असंगत और विचित्र-सी हो उठती है। लेखक नायक, उसकी पत्नी, मुस्लिम लड़की और भिखारिणी—सभी को एक स्थान पर एकत्र करके खोये हुए सूत्रों को पा लेता है। नायक अपने पिता के सामने झुक जाता है; दम्पति प्रसन्नतापूर्वक एक-दूसरे से मिलते हैं; सकीना उससे प्रेम करना छोड़ देती है और उसके साथ भाई का सम्बन्ध स्थापित कर लेती है। इस प्रकार तलाक को बचा दिया गया है। प्रेमचन्द तलाक के घोर विरोधी थे।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से *'कर्मभूमि'* का प्रेमचन्द के उपन्यासों में श्रेष्ठ स्थान समझा जाता है। अमरकान्त, सुखदा, सकीना, मुन्नी, समरकान्त, नैना और सलीम उपन्यास के महत्त्व के पात्र हैं। अमरकान्त साँचे में ढला हुआ नायक है, जो उपन्यासकार के प्रमुख पात्रों के आदर्श के अनुकूल है। उसके व्यक्तित्व का विकास संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के बीच होता है। गरीब जनता की सेवा द्वारा ही वह अपने को समझने और पाने की चेष्टा करता है। जीवन में निरन्तर संघर्षों और युद्धों का ताँता लगा रहता है। जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों पर विजय पाने की मनुष्य में अद्भुत शक्ति है। अपने वातावरण को बदलने की शक्ति

उसमें संस्कारों के कारण है। इसी आदर्श को लेखक ने उपन्यास में रखने की चेष्टा की है। उसके आदर्शवाद ने लोभी और कंजूस पिता को भी बदल दिया है। वह भाग्यवादी नहीं है। मनुष्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह अपने को कुचलने वाली सामाजिक ताकतों का चुपचाप शिकार हो जाय। वह अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है, अपने जीवन का स्वयं स्वामी है। प्रेमचन्द उस प्रगतिशील मध्य वर्ग के व्यक्ति थे, जो उथल-पुथल के असाधारण युग में सामाजिक और राजनीतिक परिस्थिति को बदलने के लिए संघर्ष कर रहा था। यही कारण है कि उनमें इस वर्ग की विचारधारा अपनी समस्त सीमाओं के साथ विद्यमान है। यही विचारधारा है, जिसने उनकी चरित्र-सम्बन्धी धारणा का निर्माण किया और समाज में मनुष्य के स्थान का निर्णय करवाया। प्रेमशंकर, सूरदास, चक्रधर और अमरकान्त—सब एक ही साँचे में ढले हुए हैं। छोटे-छोटे पात्रों पर भी उनके आदर्शवाद की छाप है।

प्रेमचन्द आदर्शवाद की भावना से इतने अधिक प्रभावित हैं कि वह अपने पात्रों के गुणों को बढ़ा-चढ़ाकर दिखाते हैं और कहानी को उनकी मनोवृत्तियों और अभिलाषाओं के अनुकूल मोड़ देते हैं। परिणाम कभी-कभी भयंकर होता है। सलीम से व्यर्थ ही त्यागपत्र दिलाया गया है। यदि उसने अपने मित्र का विरोध किया होता तो यह अधिक उपयुक्त होता। समरकान्त का परिवर्तन तो सह्य हो सकता है, क्योंकि लेखक ने उसे पहले अन्तर्द्वन्द्व और संघर्ष की दशा में दिखाया है। अमरकान्त में मानसिक द्वन्द्व है परन्तु उपन्यास में उसका पूर्ण प्रदर्शन नहीं है। उन्होंने कमज़ोर पात्र चुने हैं परन्तु उन्हें शक्ति और आदर्श से युक्त बनाने का प्रयत्न किया है। रिक्त, पाखण्डपूर्ण और निरर्थक जीवन की भावना उन्हें आन्दोलित कर देती है। वे इसके विरुद्ध विद्रोह करते हैं। सकीना और मुन्नी का समावेश अपने पात्र की दृढ़ता और शक्ति की परीक्षा के लिए किया गया है। जैसा कि कहा जा चुका है, चरित्र के विकास के लिए लेखक का ध्यान सदैव कर्म पर रहता है। वह

भारतीय नारी, जो आज तक एकाकी जीवन बिताती थी, उपन्यास में प्रसिद्ध आन्दोलन में भाग लेती दिखाई देती है। सुखदा और नैना आन्दोलन का नेतृत्व करती हैं। ऐसे आन्दोलन केवल कुछ रियायतें-भर दिला पाते हैं। मध्य वर्ग की विचारधारा का आवश्यक गुण समझौता है। लेखक ने शोषक शक्तियों का निर्भयता से भण्डाफोड़ किया है। जीवन की विषमता का भयंकर रूप जेल में दिखाई देता है, जहाँ गरीबों के लिए एक कानून है और अमीरों के लिए दूसरा। लेखक ने जेल-जीवन की भी अच्छी झाँकी दी है। दुनिया को और अच्छा बनाने के लिए मनुष्य जो प्रयत्न करता है, उसे दबाने वाली प्रतिक्रियात्मक शक्तियों को कम नहीं समझा गया है। जैसा कि नाम से प्रकट है 'कर्मभूमि' में जीवन को युद्ध-क्षेत्र का रूप दिया गया है, जहाँ कि मनुष्य कर्म की साहसपूर्ण भावना के साथ कार्य करता है। वही कर्मयोगी है जो इस संसार की विषम परिस्थितियों से पराजित हुए बिना ही जीता है और इस संसार को बदलता है। अपने पहले के उपन्यासों में प्रेमचन्द ने जीवन को एक खेल का रूप दिया है, जिसमें मनुष्य को उत्थान और पतन, आशा और निराशा, विजय और पराजय की चिन्ता किये बिना ही अपना खेल खेलना चाहिए। उसे सबसे पहले खिलाड़ी होना चाहिए। 'रंगभूमि' का जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण एक कवि का है जब कि 'कर्मभूमि' का जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण एक योद्धा का है। लेखक ने इस महान् सत्य की खोज कर ली है कि विचारों और कार्यों में सामंजस्य होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो मनुष्य द्वन्द्व और संघर्ष से, जो कि जीवन का मूल आधार है, दूर जा पड़ेगा और उसका जीवन व्यर्थ हो जायगा।

: ७ :

किसान—होरी

पहले के जिन उपन्यासों में प्रेमचन्द ने किसानों की समस्याओं पर विचार किया है उन सबमें किसानों का चित्रण दैवी प्रकोप और मानवीय अत्याचार के विरुद्ध लड़ने वाले वर्ग के रूप में किया है। वे ज़ालिम नौकरशाही, विलासी जमींदारों, क्रूर पूँजीपतियों और पाखण्डी पुजारियों के शिकार रहे हैं। असहाय किसान को जीता निगल जाने के लिए ये सभी वर्ग संगठित हो जाते हैं। उनके कृषि-सम्बन्धी सभी उपन्यासों का संघर्ष सामाजिक और आर्थिक है। इन उपन्यासों में स्त्री और पुरुष सामाजिक और आर्थिक समस्या के चहुँ ओर इसलिए एकत्रित हो गए हैं कि वे समस्या की वर्ग-सम्बन्धी उलझनों पर प्रकाश डाल सकें। किसानों, ज़मींदारों और मध्य वर्गों ने बराबर अपने समूहों का निर्माण किया है। निस्सन्देह मध्य वर्ग के व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण व्यक्ति-विशेष के रूप में हुआ है लेकिन उनमें भी बहुत से अभाव हैं। ज़मींदार अयोग्य, नैतिक दृष्टि से अशक्त, अधिकारियों के गुलाम और उन सब बातों से रहित हैं, जो चरित्र का निर्माण करती हैं। अपनी असन्दिग्ध प्रतिभा के होते हुए भी प्रेमचन्द अनैतिक पात्रों की सृष्टि क्यों नहीं कर सके, इसका मूल कारण यह है कि कला के सम्बन्ध में उनकी धारणा अपनी है। उनके भीतर का उमड़ता हुआ आदर्शवाद इतना प्रखर है कि वह उनसे ऐसे नायक की सृष्टि करवा लेता है, जो शुद्ध रूप में मानवीय आदर्शों से प्रेरित हो, और यही कारण है कि उस नायक के आसपास जिन दूसरे पात्रों का जमघट है वे सब उनके आदर्शवाद

की प्रतिष्ठा के लिए ही निर्मित हुए हैं। मानव-प्रकृति की कमज़ोरियों पर ध्यान दिये बिना और मानव-हृदय की अच्छाई-बुराई पर दृष्टिपात किये बिना वे अपने पात्रों से आदर्श व्यवहार करवाते हैं।

'गोदान' एक भारतीय किसान की जीवनगाथा है, जिसमें उसकी सभी विशेषताएँ और उसके सभी रूप विद्यमान हैं। उसका आज का जीवन भूख, बीमारी, जड़ता और वेदना से पूर्ण है और उसका भविष्य वर्तमान से कहीं अधिक अन्धकारमय और भयंकर है। उपन्यास का प्रमुख पात्र होरी उपन्यासकार की अमर सृष्टि है। यह पहला अवसर है जब कि हिन्दी कथा-साहित्य में किसान का चित्रण एक व्यक्ति के रूप में किया गया है। सूरदास वास्तव में किसान नहीं था। उसके पास एक बंजर ज़मीन थी और वह पेशे से भिखारी था। होरी पेशे और व्यक्ति दोनों दृष्टियों से किसान है। उसके चरित्र का चित्रण करने में प्रेमचन्द ने अपनी समस्त कला उंडेल दी है। लेखक स्वयं होरी है और लेखक का बड़ा पुत्र इस बात का प्रमाण देता है कि इस पात्र में महत्त्वपूर्ण आत्मकथात्मक तत्त्व विद्यमान हैं। यह एक ऐसे व्यक्ति की जीवनगाथा है, जिसने जीवन में दुखों और कठिनाइयों का तो अनुभव किया है, परन्तु इतना होने पर भी वह मानवता और उदारता के उन सिद्धान्तों को सुरक्षित रखने में सफल हुआ है, जो उसके जीवन में पथ-प्रदर्शक का कार्य करते रहे हैं। उनके जीवन की वेदना प्रतिक्षण तीव्र होती गई है। वह शक्तिहीन होकर मरने से पहले तक संकट-पर-संकट झेलता है। उसकी मृत्यु जीवन-संग्राम का अन्त कर देती है। उसका अन्त इतनी जल्दी आता है जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। वह ऋण के बोझ से बुरी तरह दबा हुआ है। जीविका चलाने के लिए वह तीन साहूकारों से रुपया उधार लेने पर विवश हो जाता है। ऋण दिन-पर-दिन बढ़ता चला जाता है। ऋण चुकाने और मितव्ययिता से दिन काटने के लिए वह अपनी शक्ति से भी अधिक काम करता है। बहुत दिनों तक अधभूखा रहने के बाद एक दिन वह सड़क पर गिर

पड़ता है और उसकी जीवनलीला समाप्त हो जाती है। डॉक्टर को बुलाने के लिए घर में रुपया नहीं है। उसकी मृत्यु के समय साहूकार आता है लेकिन इस समय उसकी लाश से अपना रुपया माँगने वाले क्रूर ब्राह्मण के रूप में। धर्म और धर्म की प्रथाओं का पालन कराने का उसे पूरा अधिकार है। पण्डित दातादीन कहता है—"अन्तिम समय है—होरी को मुक्ति प्राप्त करने के लिए अपने हाथ से गोदान करने दो।" घर में गाय नहीं है और न उसे खरीद सकने के लिए पैसा ही घर में है। घर में मुश्किल से बीस आने हैं, जो पिछले दिनों की मज़दूरी है। होरी की पत्नी इन पैसों को लाती है और ब्राह्मण के पवित्र हाथों पर रखती हुई कहती है—"महाराज, घर में न गाय है, न बछिया, न पैसा। यही पैसे हैं, यही इनका 'गोदान' है।" वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है। होरी मर जाता है। इस करुण वक्तव्य और दृश्य के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है।

भारतीय किसान अपनी मृत्यु, अपनी प्रतिष्ठा, अपनी भावना और अपनी ज़िन्दगी सभी के द्वारा पीड़ित होता है। वह अपने शोषकों द्वारा लूटा और कलंकित किया जाता है। वे लोग उसे बेदख़ल करते और उसका अधिकार छीन लेते हैं। उसके चरित्र का विश्लेषण विस्तार के साथ किया गया है, जिसे एक वाक्य में इस प्रकार रखा जा सकता है कि वह पैदा हुआ, कष्ट भोगता रहा और मर गया। भारतीय किसान के जीवन में जीवन और मरण का कोई महत्त्व नहीं है। उसके जीवन में तो दुख का ही ताना-बाना अधिक रहता है। उपन्यास में किसान की विजय नहीं दिखाई देती। उसका अन्त तो निराशावाद तथा विषाद के वातावरण में होता है। भारी कठिनाइयों के विरुद्ध निरन्तर युद्ध ही होरी के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है। अपने पहले उपन्यासों में किसानों की दशा सुधारने के लिए प्रेमचन्द ने जो सुझाव दिये थे उनकी निरर्थकता को अब वे समझ चुके हैं। उन्होंने देखा है कि प्रजातन्त्र के विकास का अर्थ बैंकरों, व्यापारियों और साहूकारों के शासन के अतिरिक्त

और कुछ नहीं है। किसानों पर उनका पंजा और भी दृढ़ और निर्दय हो गया है। प्रान्तीय स्वराज्य के युग से पहले विधानसभाएँ वाद-विवाद समितियाँ थीं, जिनमें निहित स्वार्थ वाले व्यक्तियों की तूती बोलती थी। होरी अन्त में कठिन परिस्थितियों के पंजे में फँस गया और उसका भाग्य और भी बिगड़ता गया।

होरी का लड़का भी वातावरण की विषमता का शिकार होता है। गोबर विद्रोही के रूप में अपना जीवन आरम्भ करता है। यह लगा था कि गोबर समाजवादी नेता हो जायगा और साहूकारों तथा किसानों को पीसने वाली व्यवस्था के विरुद्ध लोगों को संगठित करेगा, लेकिन वह ऐसा नहीं कर पाता। इसके विपरीत वह उसी व्यवस्था का अंग हो जाता है, जो किसानों को बरबाद कर देती है। वह अपने गाँव में रहने से नफ़रत करता है। वह अपना भाग्य-निर्माण करने के लिए नगर में पहुँचता है और एक मिल में मज़दूर हो जाता है। वह कुछ पैसे जोड़ता है और उनको अधिक व्याज पर दूसरे लोगों को उधार दे देता है। यदि गाँव में उसके पिता से किसीने इतना ज़्यादा व्याज लिया होता तो वह आगबबूला हो गया होता। यह भाग्य की विडम्बना ही समझनी चाहिए कि एक मनुष्य इसलिए अधिक कठोर सूदखोर बन जाय कि वह स्वयं सूदखोरों से घृणा करता है। गोबर असहाय था। जिस परिस्थिति में वह था उसमें वह या तो शोषक होकर रह सकता था या शोषित। अपने पात्र के जीवन की असंगतियों की झलक दिखाकर प्रेमचन्द यह बताना चाहते हैं कि वर्तमान व्यवस्था बुरी तरह थोथी हो गई है और इसी व्यवस्था के कारण किसानों की अवस्था होरी-जैसी हो रही है।

होरी और उसकी पत्नी धनिया किसानों के सभी प्रकार के गुण और दोषों से बने हैं। होरी स्वभाव से यथार्थवादी है। वह आदमी की परख जानता है और जिस दुनिया में वह रहता है उसे उसने अच्छी तरह देखा है। वह दूसरी शादी के लिए लालायित भोला से सहानुभूति-

प्रकट करता है और वचन देता है कि वह उसके अनुकूल स्त्री की खोज कर देगा। उसके मन के भीतर भोला से एक गाय ठग लेने की बात है, क्योंकि उसके जीवन की सबसे बड़ी आकांक्षा गाय प्राप्त करना ही है। प्रत्येक भारतीय किसान की अभिलाषा ही गाय के लिए होती है। वह गाय प्राप्त करने में सफल हो जाता है। सारा गाँव उसे देखने आता है। केवल उसका भाई हीरा ही उसके घर नहीं आता। होरी को अपने भाई के इस व्यवहार से बड़ा दुख होता है। वह बेचैन हो जाता है और भोला को बुलाने के लिए सन्देश भेजता है ताकि वह आकर उस गाय को देख लें, जिसकी कि बहुत दिन से इच्छा थी। वह इस बात का तनिक भी विचार नहीं करता कि इससे हीरा को ईर्ष्या होगी और वह गाय को कुछ हानि पहुँचा सकता है। वह गाय की प्रशंसा करने नहीं आता वरन् उसे ज़हर देने आता है। गाय पति और पत्नी को घोर यन्त्रणा देकर चल बसती है। यह उनकी दुख-गाथा का आरम्भ-मात्र है। होरी पुलिस के सामने कसम खाकर भाई को बचा लेता है और कहता है कि उसने उसे ज़हर देते हुए नहीं देखा। वह रुपया उधार लेकर पुलिस को रिश्वत देता है। वैसे वह पहले से ही ऋण से दबा हुआ है। वह गाँव के लगभग सभी महाजनों से रुपया लेता है। विसेसर साह, झिंगुरी साह, नोखेराम, दुलारी, मँगरू साह किसानों के रक्त-शोषक हैं। तीन वर्ष में रकम सौ रुपये हो जाती है। दो साल बाद वह डेढ़ सौ रुपये फिर माँगता है। मँगरू साह उसे बैलों की जोड़ी खरीदने के लिए साठ रुपये उधार दे देता है। उसने इस रकम को कई बार अदा किया पर रकम ज्यों-की-त्यों बनी रही। होरी के दो लड़कियाँ शादी करने को हैं। यह उसके ऊपर अतिरिक्त भार है। वह ग़रीब ऋण से बुरी तरह पिसा हुआ है। वह घोर श्रम करता है। उसके बच्चे जेठ की तपती हुई दोपहरी में उसके साथ काम करते हैं। यह रोज़ का उबाने वाला जीवन उसे बिताना पड़ता है और वह इसमें अन्धे बैल की तरह जुता रहता है। वह दूसरे के लिए खून को पसीना

करता है। वह उनके लिए लड़ता है, जो कि उसे बरबाद करना चाहते हैं। महाजन, सौदागर, सरकारी नौकर और पुलिस उसे कुचलने को मौजूद हैं। होरी कहता है कि किसान के लिए आधे दर्जन से अधिक महाजन हैं। वे उसका खून पीते हैं।

रायसाहब राजनीतिक नेता हैं, जो जेल जा चुके हैं। लेखक कहता है कि वे समाजवादी विचारधारा को मानने वाले हैं। वे परिश्रम के महत्त्व को समझते हैं और गरीबों के शोषण की निन्दा करते हैं। लेकिन उनकी कथनी और करनी में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। शोषण के ठेकेदारों में से महाजन का इस उपन्यास में सबसे अधिक भण्डाफोड़ किया गया है। वह बड़ा चलता-पुरज़ा होता है। वह किसान को मरने नहीं देता क्योंकि ऐसा करने से सोने का अण्डा देने वाली मुरगी नहीं रहेगी।

एक आलोचक ने इस उपन्यास का सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए इसके सन्देश की ओर संकेत करने के लिए ग्रामीणों द्वारा खेले गए प्रहसन का उल्लेख किया है। किसान आता है, ठाकुर के पैरों पर गिर पड़ता है और सिसकना आरम्भ करता है। बड़े सोच-विचार के बाद ठाकुर उसे दस रुपये देने पर राज़ी हो जाता है। किसान काग़ज़ पर दस्तख़त करता है। ठाकुर उसे केवल पाँच रुपये पकड़ा देता है। इस पर उसे बड़ा आश्चर्य होता है और वह कहता है—

'यह तो पाँच ही हैं मालिक !'
'पाँच नहीं दस हैं, घर जाकर गिनना।'
'नहीं सरकार, पाँच हैं।'
'एक रुपया नज़राने का हुआ कि नहीं ?'
'हाँ, सरकार !'
'एक तहरीर का ?'
'हाँ, सरकार !'
'एक कागद का ?'

'हाँ, सरकार !'

'एक दस्तूरी का ?'

'हाँ, सरकार !'

'एक सूद का ?'

'हाँ, सरकार !'

'पाँच नगद । दस हुए कि नहीं ?'

'हाँ, सरकार ! अब यह पाँचों भी मेरी ओर से रख लीजिए ।'

'कैसा पागल है !'

'नहीं सरकार, एक रुपया छोटी ठकुराइन का नज़राना है, एक रुपया बड़ी ठकुराइन का। एक रुपया छोटी ठकुराइन के पान खाने को, एक रुपया बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक, वह आपके क्रिया-करम के लिए।'

अन्तिम वाक्य में व्यंग्य और कटाक्ष का तीखापन गज़ब का है।

प्रेमचन्द किसानों के कष्टों और शोषण से इतने अधिक पिघल गए हैं कि वे अपनी उमड़ती हुई भावनाओं को ऐसी ही भयानकता से व्यक्त करते हैं। ऊपर का वार्तालाप—विशेषकर उसका अन्तिम वाक्य—गाँव में शोषण के कलंक का निर्देशक है। उन्होंने साहूकारों का निर्भयता से भण्डाफोड़ किया है। वे ऐसे घृणित सामाजिक और आर्थिक अन्याय के प्रति कभी नहीं झुक सकते। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में उनका विश्वास ईश्वरीय विधान में भी बिलकुल नहीं रहा था। यह उस भारतीय के लिए बड़ा कठिन काम था, जो आस्तिकता की पुरातन परम्परा और धीरे-धीरे परिवर्तित होने वाले सामाजिक वातावरण के भीतर पालित-पोषित हो। वे पहले भारतीय लेखक हैं, जिन्होंने गहराई से किसानों के जीवन का अध्ययन किया हो और जिन्होंने उसे इतनी सजीव कल्पना तथा अद्‌भुत कौशल के साथ चित्रित किया हो। उनका यह कार्य हिन्दी कथा-साहित्य ही नहीं समस्त भारतीय कथा-साहित्य में बेजोड़ है। शरचन्द्र तथा दूसरे उपन्यासकारों के प्रयत्न इसके सम्मुख

फीके हैं, क्योंकि प्रेमचन्द का चित्रण अपनी विस्तृत रूपरेखा के कारण ही महान नहीं है वरन् अपनी सूक्ष्म विवेचना के कारण भी महत्त्वपूर्ण है। 'गोदान' किसान के जीवन का काल्पनिक प्रतिनिधित्व करता है और अत्याचारी सरकार के साथ उसने जो मोर्चा लिया है उसका जीता-जागता स्वरूप प्रस्तुत करता है।

'गोदान' में समाज के सम्पन्न और विपन्न वर्गों का विरोध स्पष्ट शब्दों में दिखाया गया है। ग़रीबों के जीवन का चित्रण करने में लेखक को कमाल हासिल है। यद्यपि दो विभिन्न सामाजिक वर्गों से सम्बन्ध रखने वाली अलग-अलग कथाएँ परस्पर आगे बढ़ने में कोई विशेष योग नहीं देतीं फिर भी वे लेखक की इस प्राचीन धारणा को स्पष्ट अवश्य करती हैं कि प्रत्येक वस्तु के दो पक्ष होते हैं। निस्सन्देह छोटे कर्मचारियों, महाजनों, पुलिस, ज़मींदारों और उद्योगपतियों आदि शोषण के ठेकेदारों का हवाला दिये बिना किसानों की गरीबी और उनके शोषण का चित्रण नहीं किया जा सकता। कथा की कीली किसान है, जिसके चारों ओर मध्य वर्ग का जीवन चक्कर लगाता है। यह दिखाया गया है कि कैसे सामाजिक और आर्थिक ताकतें किसान को अन्त में कुचल डालती हैं। होरी मूल भावना का केन्द्र है। उसके चरित्र का चित्रण उपन्यास में विशेष रूप से सुन्दर है। वह अपनी पत्नी के साथ बातचीत करने और अपने ज़मींदार की चापलूसी करने में बुद्धिमानी से काम लेता है! वह परिश्रमी और उत्साही है लेकिन ऐसा होना उसके सुखी होने में सहायक नहीं होता। वह ऋण के बोझ से इतनी बुरी तरह दबा हुआ है कि मृत्यु ही उसे पीड़ा से मुक्ति दिला सकती है। दरिद्र होते हुए भी वह अपने उस भाई के लिए अत्यधिक उदारता दिखलाता है, जिसने कि उसकी गाय को ज़हर दे दिया है। यद्यपि उसे सारे गाँव के क्रोध का शिकार होना पड़ता है तथापि वह उदारतापूर्वक उस अभागी स्त्री को शरण देता है, जिससे कि उसका पुत्र शादी करना चाहता है। सामाजिक नियमों का उल्लंघन करने के भारी अपराध के कारण समाज

के मुखिया उस पर जुर्माना करते हैं तो उसे भी वह सहन कर लेता है। उस देवता के रूप में चित्रित नहीं किया गया है वरन् वह अपनी कमज़ोरियों के कारण मनुष्य के रूप में प्रस्तुत है। वह अपने स्वार्थ के लिए कभी-कभी झूठ भी बोलता है। वह एक वृद्ध विधुर से अपनी लड़की की शादी करने के लिए दो सौ रुपये रिश्वत भी ले लेता है। यद्यपि वह अपनी स्त्री से खूब प्यार करता है तथापि कभी-कभी भोलेपन में गांव की सुन्दर साहूकारिन से भी प्यार की बातें कर लेता है।

धनिया का चरित्र उसके पति के चरित्र के साथ बँधा हुआ है। अहंकार और चापलूसी नामक जो स्वाभाविक कमज़ोरियाँ स्त्रियों में होती हैं, वे उसमें भी हैं। वह अपने पति पर शासन करना चाहती है और वह अनुकूल अवसर पर उसे शासन करने देता है। वह उसके साथ वैसा ही व्यवहार करती है जैसा कि एक माँ अपने बच्चे के साथ व्यवहार करती है। उसे व्यावहारिक ज्ञान के लिए उससे बहुत सी बातें सीखनी हैं। कुछ असमंजस के बाद वह अपने पुत्र की प्रेयसी को घर में स्थान दे देती है। बाहर से देखने में वह शुष्क और कठोर है, लेकिन भीतर से देखने में वह कोमल और करुण हृदय वाली है। वह अपनी जिह्वा पर नियन्त्रण नहीं रख सकती। उसकी बात व्यंग्य से पूर्ण होती है। होरी उसके कटाक्षों से घबराता है। कभी-कभी वह उसके व्यंग-बाणों से इतना उत्तेजित हो उठता है कि उसे पीट देता है। लेकिन ऐसे झगड़ों से, जो उनके जीवन की एकरसता को भंग कर देते हैं, उनके प्रेम में कोई अन्तर नहीं आता। वे आदर्श दम्पति हैं, जिनकी कल्पना लेखक ने अपने निजी विवाहित जीवन से की है। उसके बड़े पुत्र श्रीपतराय ने इस बात की ओर संकेत किया है कि होरी के चरित्र में उनके जीवन के निजी तत्त्व विद्यमान हैं। होरी कभी-कभी हवा में उड़ता है, जब कि धनिया के पैर ज़मीन पर दृढ़ता से टिके रहते हैं। आत्म-संरक्षण की प्रवृत्ति उसके भीतर गहराई से घर किये हुए है। वे एक-दूसरे के पूरक हैं। इस आदर्श दम्पति के अतिरिक्त कुछ और

विवाहित दम्पति भी उपन्यास में चित्रित हैं। गोबर और झुनिया स्वार्थी स्वभाव को व्यक्त करते हैं और स्वेच्छा तथा प्रेम के आधार पर शादी करने पर भी उनके सम्बन्धों में मिठास नहीं है। मातादीन और सिलिया का सम्बन्ध नैतिक दृष्टि से कलुषित है; मेहता और मालती का मामला भी खोखला है; खन्ना और गोविन्दी विवाहित जीवन में स्वभाव की भिन्नता के प्रतिनिधि हैं। गोबर पथभ्रष्ट हो जाता है और आभिजात्य की हलचल-भरी दुनिया में जा पहुँचता है, जिससे कि उसका नैतिक पतन हो जाता है। तीव्र इच्छा रखते हुए भी वह अपने भूखे माता-पिता की कोई सहायता नहीं कर सकता। मातादीन गाँव का ऐसा कुलीन पुरोहित है, जो ग़रीब जनता के अन्धविश्वास से लाभ उठाता है। उसने अपनी वासना की पूर्ति के लिए अपने घर में एक नीच जाति की औरत रख ली और उसके घर वालों ने उसकी बुरी तरह मरम्मत करके उसके मुँह में ज़बर्दस्ती हड्डी डाल दी।

इन पात्रों के साथ ही प्रेमचन्द ने उपन्यास में मध्य वर्ग के स्त्री-पुरुषों के पूर्ण चित्र अंकित किये हैं। मिस मालती, जो कि विदेश से डॉक्टरी पढ़कर लौटी है, उस सामाजिक तितली के रूप में चित्रित की गई है, जो कि पश्चिमी सभ्यता की विशेष देन है। सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों में वह मनुष्य की समानता का दावा करती है। वह विवाहितों से प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने में भी नहीं चूकती और एक अविवाहित के प्रेम में भी फँस जाती है। मि० मेहता, जो लेखक के जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसके सबसे पहले शिकार होते हैं लेकिन वे उसके प्रेम का प्रतिदान नहीं देते। मि० खन्ना दूसरे शिकार हैं लेकिन उन्हें वह खिलाती-भर है। वह उनके और उनकी पत्नी के बीच मतभेद पैदा कर देती है। वह उस तितली की तरह है, जो यहाँ-वहाँ हर एक सामने पड़ने वाले फूल का रस लेती फिरती है। वह प्रशंसा की इतनी भूखी है कि किसी एक से प्रेम नहीं कर सकती। अन्त में वह एक समाज-सुधारक बन जाती है।

उसके चरित्र में इस परिवर्तन को लाने का श्रेय मि० मेहता को है, जो आदर्शवाद में हृदय से विश्वास रखते हैं। शंकालु और नास्तिक होते हुए भी वे समाज-सेवा में विश्वास रखते हैं। वे विचारों के क्षेत्र में ही वीरता दिखा सकते हैं, घर के काम-काज में वे पूरी तरह असफल हैं। वे क्रियात्मक जीवन की अपेक्षा उसके सैद्धान्तिक रूप में अधिक रुचि रखते हैं। वे उन व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने अपने पुरातम विश्वासों को तो खो दिया है परन्तु जो आभिजात्य सभ्यता में नये विश्वासों की खोज में इधर-उधर भटक रहे हैं। सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं पर उनके व्याख्यान इतने लम्बे हो जाते हैं कि उन्हें देखकर पाठक का धैर्य छूट जाता है। उनके तथा मध्य वर्ग के अन्य पात्रों द्वारा प्रेमचन्द ने इस उपन्यास में अपनी नवीन विचारधारा को अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। रायसाहब, जो स्वयं मध्य वर्ग के व्यक्ति हैं, राजनीतिक नेताओं का नमूना पेश करते हैं। वे देशभक्त हैं, लेखक है, विश्वबन्धुत्व में विश्वास रखते हैं और क्रान्तिकारी विचारक हैं, जो किसानों के प्रति सच्ची सहानुभूति प्रकट करके अपने समाजवादी होने का प्रमाण देते हैं। इतना होने पर भी वे चमगादड़ हैं। वे ग़रीब जनता से बेगार लेते हैं और एक पत्र-सम्पादक को इसलिए रिश्वत देते हैं कि वह उनके क्रूर व्यवहार के समाचारों को दबा दे। मि० खन्ना एक मिल-मालिक हैं। उन्होंने होरी के गाँव के पास एक शूगर-मिल स्थापित की है। गन्ने की सारी पैदावार और दूसरी चीज़ें इस मिल को भेजी जाती हैं। इस मिल-मालिक के एजेण्टों द्वारा होरी की सारी कमाई कानूनी तौर पर ठग ली जाती है। एक आलोचक ने गोबर के उस कथन को उद्धृत किया है, जिसमें उसने अपने पिता की घोर और असह्य दरिद्रता का वर्णन किया है। वह इस प्रकार है—

"घर का एक हिस्सा गिरने-गिरने को हो रहा था। द्वार पर केवल एक बैल बँधा हुआ था, वह भी नीमजान। और यह दशा केवल होरी ही की न थी। सारे गाँव पर यह विपत्ति थी। ऐसा एक आदमी भी

नहीं जिसकी रोनी सूरत न हो, मानो उनके प्राणों की जगह वेदना ही बैठी उन्हें कठपुतलियों की तरह नचा रही हो। चलते-फिरते थे, काम करते थे, पिसते थे, घुटते थे—इसलिए कि पिसना और घुटना उनकी तक़दीर में लिखा था। जीवन में न कोई आशा है, न कोई उमंग, जैसे उनके जीवन के सोते सूख गए हों और सारी हरियाली मुरझा गई हो। अभी तक खलिहानों में अनाज मौजूद है, मगर किसी के चेहरे पर प्रसन्नता नहीं है। बहुत-कुछ तो खलिहान में ही तुलकर महाजनों और कारिन्दों की भेंट हो चुका है और जो कुछ बचा है, वह भी दूसरों का है।''

मि० खन्ना का कार्य होरी ही नहीं प्रत्येक किसान के कष्टों को बढ़ाने का है। प्रेमचन्द ने जीवन और मृत्यु के बीच पिसते हुए इस वर्ग के अन्धकारपूर्ण भविष्य को देखा है। मृत्यु का स्वागत होगा परन्तु वह उसको शाश्वत विषाद और शाश्वत पतन से मुक्ति नहीं दिला सकती। उसको वर्तमान जीवन से कोई आशा नहीं है। लेखक के शब्दों में न उनको साम्राज्य चाहिए और न सिंहासन। वे तो सुखमय जीवन की भी माँग नहीं करते। वे तो मोटा खाना और मोटा कपड़ा चाहते हैं लेकिन उनको वह भी नसीब नहीं होता। होरी तीस वर्ष तक संघर्ष करने के बाद जीवन-संग्राम में थक जाता है। उसकी पराजय होती है और उसके जीवन का अन्त दुखमय है, लेकिन उसकी निराशा और विषाद से पूर्ण कहानी में एक किसान द्वारा भीषण आपत्तियों का सामना करने का जो वर्णन है, वह उसकी महत्ता का अनुभव कराने के लिए काफ़ी है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मध्य वर्ग की कहानी भी किसान की कहानी के समानान्तर चलती है, लेकिन वह इसके किनारों को बहुत ही कम स्पर्श करती है। मध्य वर्ग की इस कहानी से प्रेमचन्द का पश्चिमी सभ्यता की बाढ़ से उत्पन्न समस्याओं के सम्बन्ध में जो दृष्टिकोण है उसका स्पष्टीकरण होता है। प्रेमचन्द ने, जो कि कुछ थोड़े-से प्राचीनतावादी थे, पश्चिमी सभ्यता की नकल के खिलाफ अपनी आवाज़

उठाई। इसने नैतिक धरातल को नीचा कर दिया और संस्कृति को गहरा आघात पहुँचाया। उन्होंने समाज में स्त्री की स्थिति और उसके महत्त्व पर क़लम चलाई। उनका स्त्री-सम्बन्धी दृष्टिकोण त्याग, तपस्या और संयम के प्राचीन आदर्श से पूर्ण है, जिसका रूप गोविन्दी में देखा जा सकता है। उनके स्त्री पात्रों में निरन्तर जो यह रूप मिलता है, उसका कारण 'मातृ-आदर्श' है। गोविन्दी का निर्माण इसी आदर्श के अनुकूल है। वह अपने में लीन, स्वार्थी और लोभी पति की अपेक्षा अधिक समझदार, व्यावहारिक, ईमानदार और उदार है। मिस मालती का चरित्र उसके आदर्श चरित्र के नितान्त प्रतिकूल है। मध्य वर्ग के जीवन पर जो कुछ कहा गया है, वह हमारे हृदय में विश्वास को नहीं जगाता और उसके पात्रों का चित्रण भी यथार्थवादी नहीं है। लेकिन किसानों की कहानी में लेखक की वर्णन-शक्ति चरम विकास को प्राप्त कर गई है और उसकी चरित्र-चित्रण की प्रणाली और भी अधिक यथार्थवादी तथा सरस हो गई है। आरम्भिक उपन्यासों के सस्ते उपायों को छोड़ दिया गया है और सभी पात्र अपनी स्वाभाविक मृत्यु से मरते हैं। इस महाकाय उपन्यास में असम्भव घटनाओं और प्रसंगों को कोई स्थान नहीं है। भाषा घरेलू, सादा, मुहावरेदार और अनुभव तथा ज्ञान से पूर्ण है। प्रेमचन्द ने शब्दों, मुहावरों और पात्रों के नामों से अत्यन्त अद्भुत ग्रामीण वातावरण की सृष्टि की है। जहाँ तक किसानों के जीवन का सम्बन्ध है, उपन्यास-कला का श्रेष्ठतम उदाहरण है और वह सदैव महान् तथा अमर कृति के रूप में प्रशंसित होता रहेगा।

: ८ :

कला और शिल्प-विधान

यदि पाश्चात्य मानदण्ड से प्रेमचन्द के उपन्यासों की परीक्षा की जाय तो उनमें निश्चय ही अनेक कलात्मक त्रुटियाँ दिखाई देंगी। उनके उपन्यासों पर विचार करते हुए दोषपूर्ण शिल्प-विधान और अतिनाटकीय प्रसंगों की ओर संकेत किया गया है। कोई भी व्यक्ति ऐसा न होगा, जो उनके विचित्र संयोगों, असम्भव परिस्थितियों, स्थूल हास्य, लम्बे भाषणों और निरर्थक वर्णनों से खीज न उठे। लेकिन इन दोषों का कारण भी स्पष्ट है। यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रेमचन्द को कोई परम्परा विरासत में नहीं मिली, उनको अपना शिल्प-विधान स्वयं गढ़ना पड़ा। अपने यौवन के आरम्भ में वे देवकीनन्दन खत्री तथा अन्य लेखकों के जासूसी और ऐयारी के उपन्यासों को पढ़ा करते थे। इसलिए यदि वे अपने से पहले लेखकों के प्रभाव को नहीं छोड़ सके तो इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है। टॉमस हार्डी की कला के विकास से उनकी कला का विकास बहुत-कुछ समता रखता है। हार्डी भी अपनी श्रेष्ठतम कृतियों तक में विलकी कॉलिन्स के प्रभाव को नहीं छोड़ सका था। जैसे-जैसे उसमें प्रौढ़ता आती गई वैसे-वैसे वह पूर्ववर्ती प्रभाव से अधिकाधिक बचता गया, लेकिन फिर भी उसके आलोचकों ने यह ठीक ही कहा है कि हार्डी की कला पूर्णरूपेण तृप्ति देने वाली नहीं है और निरन्तर आकस्मिक घटनाओं, संयोगों और अतिनाटकीय प्रसंगों के समावेश से पाठक उसकी कला की ओर से बहुत-कुछ विरक्त हो जाते हैं। प्रेमचन्द की कला भी उनकी आयु के साथ विकसित हुई। यदि वे कुछ दिन और

जीवित रहे होते तो उनकी कला में असाधारण पूर्णता के दर्शन हुए होते। जो कुछ पूर्णता उन्होंने प्राप्त की थी उसकी झलक उन्होंने अपने अन्तिम उपन्यास में दी है। यह भाग्य की विडम्बना ही समझिए कि जब उनका अभ्यास का काल समाप्त हुआ और उन्होंने प्रौढ़ता प्राप्त की तभी वे चल बसे।

प्रेमचन्द ने वर्णन और चरित्र-चित्रण की कला का विकास प्रयोगों और भूलों द्वारा किया। वे अपने शिक्षक स्वयं ही थे। उन्होंने शिल्प-विधान और कला की समस्याओं पर विशेषकर उपन्यास और कहानी के ढाँचे पर स्वयं विचार किया। ये ही दो उनकी अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन थे। देशी-विदेशी कथा-साहित्य की जो भी कृतियाँ उनके हाथ में आईं उन्हींको उन्होंने एक भूखे आदमी की तरह पढ़ डाला। चूँकि वे समाज-सुधार में विशेष रुचि रखते थे, अतः उन्होंने अपनी कला को इसका साधन बनाया। इतना होते हुए भी वे कहानी को कहानी के लिए भी प्यार करते थे और कथाकार से उनकी सबसे पहली माँग एक सुन्दर कहानी की होती थी। कहानी-कला के प्रति इस दृष्टिकोण की रक्षा उन्होंने अपनी कृतियों में की है। चूँकि वे स्वयं ही सब-कुछ सीखे थे इसलिए उनकी आरम्भिक कृतियों में अनेक भूलें रह गई हैं। लेकिन पीछे की उनकी सर्वश्रेष्ठ समझी जाने वाली कृतियों में वे भूलें सुधार दी गई हैं।

उनके आरम्भिक उपन्यास 'सेवासदन' में पाठक का ध्यान उपन्यास की नायिका 'सुमन' पर केन्द्रित हो जाता है। उसकी शादी विषम सामाजिक परिस्थितियों में होती है और वह इसके लिए बाध्य होती है कि वह अपने पति के घर को छोड़कर वेश्या का पेशा अपना ले। अन्त में वह एक आश्रम में स्थान पाती है, जो उस जैसी ही अभागी स्त्रियों के लिए स्थापित किया गया है। निस्सन्देह सुमन उपन्यास की रीढ़ है, लेकिन उपन्यास का सन्देश उसके चरित्र में ही नहीं है, वह उन घटनाओं और प्रसंगों में विशेषकर घटनाओं और पात्रों के उस सुखद

सम्मिश्रण में है, जो अन्त में समाज-सुधार का अंग बन जाता है। उपन्यास में घटनाओं का सम्बन्ध समाज-सुधार से ही है। प्रेमचन्द की कला का मूल उद्देश्य न तो चरित्र-चित्रण है और न ही वस्तु-संगठन है, वरन् सुधार है। साहित्य के दो उद्देश्य हैं—एक जीवन की व्याख्या करना और दूसरा जीवन को परिवर्तित करना। प्रेमचन्द पिछले पर अधिक जोर देते हैं। वस्तुतः उनके उपन्यासों में सबसे पहली बात है उनमें सामाजिक समस्याओं का प्रतिविम्बित होना। चरित्र इन समस्याओं को अधिक तीव्रता देने के लिए आते हैं। उदाहरण के लिए सुमन का चरित्र उस समय कोई महत्त्व नहीं रखता जब कि वेश्यावृत्ति की समस्या रंगमंच के केन्द्र को घेर लेती है। नायिका का पिता ऐसी परिस्थितियों में डाल दिया जाता है, जिनसे उसके चरित्र में परिस्थिति को विषम बनाने वाली कमज़ोरियाँ आ जाती हैं। एक उलझन दूसरी को तब तक जन्म देती रहती है जब तक कि कहानी बुरी तरह नहीं उलझ जाती। सुमन के चरित्र का अदृश्य प्रभाव उसकी बहन के जीवन पर यह पड़ता है कि वह बेचारी 'अविवाहित विधवा' रहती है। सुमन का अध्ययन नगर के सामाजिक नेताओं की दृष्टि से भी किया जा सकता है। प्रेमचन्द इन व्यक्तियों का भण्डाफोड़ करने और उनकी कथनी-करनी के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त अवकाश प्राप्त कर लेते हैं।

'सेवासदन', 'निर्मला', 'प्रतिज्ञा' और 'गबन' एक ही प्रधान कथा के ढाँचे पर खड़े किये गए हैं। 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'कायाकल्प', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में एक से अधिक कथाओं का समावेश है। पहले प्रकार के उपन्यासों में वस्तु-संगठन की दृष्टि से 'निर्मला' सर्वश्रेष्ठ है। निर्मला उपन्यास की प्रमुख पात्र है। घटनाएँ इस क्रम से आती हैं कि उसके चरित्र का प्रस्फुटन और विकास पग-पग पर होता चला जाता है। ऐसा उस समय तक होता है जब तक कि उसका अन्त अनमेल विवाह की सामाजिक समस्या के भीतर नहीं हो जाता। सौतेले लड़के की मृत्यु के पश्चात् उसका जीवन शून्य और निरर्थक हो जाता है। वह वेदना

से मर जाती है। 'प्रतिज्ञा' भी इसी कोटि का उपन्यास है। अमृत और पूर्णा कथा के प्राण हैं। अमृत विधवा से शादी करने की प्रतिज्ञा करता है। पूर्णा विधवा हो जाती है। इतना होने पर भी वे परस्पर शादी नहीं करते। उपन्यासकार का लक्ष्य पाठकों का ध्यान समाज में वैधव्य की समस्या की ओर खींचना है। अपनी आरम्भिक कथाकृतियों में लेखक ने निरन्तर इसी प्रणाली का आश्रय लिया है। कथा उद्देश्य विशेष की साधिका बनकर आती है। जो उपन्यास मध्य वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं उनका ध्येय सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालना है। 'ग़बन' में भी एक ऐसी घरेलू समस्या है, जिसके परिणाम बड़े गम्भीर होते हैं। उपन्यास बताता है कि किस प्रकार एक स्त्री का आभूषण-प्रेम उसके पति को विपत्ति में डाल सकता है। अन्त में जालपा कष्ट-सहिष्णुता और त्याग के बल पर अपने पति को सर्वनाश से बचाती है। पहले के उपन्यासों में प्रेमचन्द के पात्र सामाजिक समस्याओं के अधीन रहते थे, लेकिन इस उपन्यास में आकर प्रेमचन्द ने इस त्रुटि को दूर कर दिया है। इस उपन्यास में पात्रों और सामाजिक परिस्थितियों के पारस्परिक सम्बन्ध पर ज़ोर दिया गया है। उन्होंने बताया है कि कैसे एक कमज़ोर पात्र को परिस्थितियाँ दबा लेती हैं। चरित्र के विकास और सामाजिक समस्या के महत्त्व पर समान बल दिया गया है। पहले की उस प्रणाली से, जिसमें कि अन्य सभी तत्त्व सामाजिक समस्याओं के विवेचन और हल के अधीन रहते थे, हटकर इस प्रणाली को अपनाना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है। इस उपन्यास को लिखने से पहले प्रेमचन्द ने गाल्सवर्दी के तीन नाटकों का अनुवाद किया था, इसलिए यह सम्भव है कि सामाजिक परिस्थिति और पात्र के बीच का यह सम्बन्ध गाल्सवर्दी के प्रभाव के कारण हो। यद्यपि इसके प्रमाण के लिए कोई वस्तु नहीं है तथापि यह तो निर्विवाद है कि इस महान् नाटककार का उन पर प्रभाव अवश्य पड़ा था। जो कुछ भी हो, 'गबन' की कथावस्तु से उसका चरित्र अधिक महत्त्व का है, लेकिन साथ ही मनुष्य के भाग्य का निश्चय करने वाली

सामाजिक शक्तियों पर भी समान बल दिया गया है।

दूसरे प्रकार के उपन्यासों में प्रेमचन्द ने दुहरी कथावस्तु की प्रणाली अपनाई है। इन उपन्यासों की सभी कथाएँ समानान्तर चलती हैं। 'प्रेमाश्रम' में एक से अधिक कथाएँ हैं। ज्ञानशंकर, प्रेमशंकर, कमलानन्द और गायत्री ज़मींदार वर्ग के हैं। उपन्यास की एक कथा इनके जीवन और समस्याओं पर प्रकाश डालती है। मनोहर, बलराज, कादिर और अन्य पात्र दूसरे वर्ग के हैं। दूसरी कथा गरीबों की कठिनाइयों और परेशानियों का चित्रण करती है। बाह्य दृष्टि से दोनों कथाओं का सम्बन्ध नाममात्र को दिखाई देता है, परन्तु आन्तरिक दृष्टि से वे एक-दूसरी से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। किसानों के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले जितने उपन्यास हैं, सभी में दुहरी या तिहरी कथाएँ हैं। जिन वर्गों के स्वार्थ परस्पर टकराते हैं उनके विरोध को स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक भी है। अमीर और ग़रीब दो जातियाँ हैं, इसलिए एक से अधिक कथाओं का समावेश अनिवार्य हो जाता है। जिन उपन्यासों में केवल एक ही प्रधान कथा है, वे एक ही वर्ग—मध्य वर्ग—की समस्याओं से सम्बन्ध रखते हैं। इन उपन्यासों में वर्ग-संघर्ष इतना तीव्र नहीं है। किसानों के जीवन से सम्बन्ध रखने वाले उपन्यास अवश्य ही दो वर्गों—किसानों और उनके मालिकों—से सम्बन्ध रखते हैं। ज़मींदार, उद्योगपति या साहूकारों के कार्यों का प्रभाव उन किसानों और ग़रीब देहातियों पर पड़ता है, जो उनके अत्याचार और शोषण के विरुद्ध विद्रोह करते हैं। यद्यपि बाहर से इन दोनों वर्गों का जीवन अलग दिखाई देता है तथापि उनके टकराते हुए आर्थिक स्वार्थ उन्हें एक-दूसरे के सामने लाकर खड़ा कर देते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कई कथाओं का होना आवश्यक है। लियो टाल्स्टाय, विक्टर ह्यूगो, मैक्सिम गोर्की आदि जिन उपन्यासकारों ने एक ही उपन्यास में विभिन्न वर्गों का समावेश किया है उन्होंने इसी प्रणाली को अपनाया है। प्रेमचन्द ने अपने मानसिक या कलात्मक विकास पर इन कलाकारों के प्रभाव को

स्वीकार किया है।

'रंगभूमि' में दो से भी अधिक कथाओं का प्रयोग है। सूरदास एक वर्ग का केन्द्र है। वह उन अनेक ग्रामीणों से घिरा है, जो उससे घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। वे भारतीय गाँव के प्रतिनिधि हैं। प्रेमचन्द एक नये सामाजिक वातावरण के बीच इन लोगों के जीवन और इनकी समस्याओं का वर्णन करते हैं। जॉन सेवक औद्योगिक शक्तियों का प्रतिनिधि है। वह ज़मींदारों और पूँजीपतियों, अफ़सरों और पुलिस से घिरा है। ताहिर अली दोनों वर्गों के बीच की कड़ी है। ज़मींदार अपने अतिरिक्त धन को नये व्यापारों में लगाकर धीरे-धीरे पूँजीपति बनते जा रहे हैं। उनके बीच एक छोटे-से आदर्शवादी पात्रों के दल का प्रतिनिधि प्रेमशंकर है, जो किसानों का अगुआ है। वह दोनों विरोधी दलों में समझौता कराने का प्रयत्न करता है। विनय आतंकवाद की प्रभावहीन राजनीतिक विचारधारा को अपनाकर परिस्थिति से मुख मोड़ लेता है। प्रभुसेवक अपने लिए काव्य का काल्पनिक संसार बना लेता है और विरोध और संघर्ष से दूर एकाकी जीवन व्यतीत करता है। ये आदर्शवादी वर्ग संघर्ष के महत्त्व को नहीं समझते। सूरदास और जॉन सेवक का संघर्ष तब तक चलता है जब तक कि सारा गाँव तबाह नहीं हो जाता है। इस प्रकार विभिन्न कथाएँ और वर्ग सामयिक-सामाजिक परिवर्तन का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करते हैं। उपन्यास का प्रासाद एक विशाल आधार-शिला पर इसलिए खड़ा किया गया है कि जिससे प्राचीन ग्राम्य-व्यवस्था पर पड़े हुए औद्योगीकरण-सम्बन्धी प्रभाव का वर्णन किया जा सके। जिस कथा में इतनी अधिक बातों का समावेश हो, उसके लिए कई कथासूत्रों का होना अनिवार्य हो जाता है।

'कर्मभूमि' की कथावस्तु का साँचा दूसरे उपन्यासों से नितान्त भिन्न है। इसमें दो कथाएँ हैं—एक नागरिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली और दूसरी ग्रामीण जीवन से सम्बन्ध रखने वाली। इन दोनों असम्बद्ध कथाओं को उपन्यास के नायक के अन्त में किये गए कार्यों से जोड़ दिया

जाता है। अमरकान्त नगर में अछूतों का नेता है और ग्राम में किसानों का। वह दो संघर्षों का जन्मदाता है—एक मन्दिर-प्रवेश का और दूसरा लगानबन्दी का। वह पीड़ितों की माँगों को पूरा कराने की पुकार लगाता है। उनकी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को वही मुखरित करता है। वह नगर और ग्राम में सामाजिक तथा आर्थिक अन्याय के विरुद्ध किये गए विद्रोह का प्रतीक बन जाता है। चरित्र-चित्रण सामाजिक उद्देश्य के अधीन है। अभी प्रेमचन्द वस्तु-संगठन और चरित्र-चित्रण की प्राचीन प्रणाली से छुटकारा नहीं पा सके हैं। वह अभी तक सामाजिक उद्देश्य और सामाजिक आलोचना को इतना अधिक अपनाये हुए हैं कि प्रचार की खातिर कला की बलि चढ़ा देते हैं।

'गोदान' वस्तु-कौशल की दृष्टि से कोई नया प्रयोग नहीं है। वह यत्र-तत्र किये गए कुछ परिवर्तनों के साथ प्राचीन नमूने की ही पुनरावृत्ति है। ऐसा इसलिए हुआ है कि जिस सामग्री से यह नमूना सजाया गया है, वह कुछ भिन्न प्रकार की है। होरी किसानों का प्रतिनिधि है। रायसाहब उच्च वर्ग के प्रतीक हैं। मेहता और मालती ग़रीबों के लिए मौखिक सहानुभूति भर दिखाते हैं। जीवन की आर्थिक समस्याओं को वे भावुकता से स्पर्श करते हैं। संकटकाल में वे अपने नाते-रिश्तेदारों के साथ जा मिलते हैं। उनके लिए सम्पत्ति ही सब-कुछ है। होरी का पूँजीपतियों से सीधा संघर्ष नहीं होता। उसका पहला संघर्ष तो साहूकारों से होता है। उपन्यास किसानों और साहूकारों के संघर्ष का विस्तार से वर्णन करता है। उच्च वर्ग के जीवन का चित्रण इसलिए किया गया है कि जिससे अमीरों और ग़रीबों के बीच के अन्तर को अधिक अच्छी तरह प्रकट किया जा सके और समस्त सामाजिक व्यवस्था को पूरी तरह चित्रित किया जा सके। यदि ऐसा न होता तो उच्च वर्ग के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली निरर्थक कथा को उपन्यास से आसानी से निकाला जा सकता था। उपन्यास के प्रकाशित होने पर मैंने उपन्यासकार को, जो कि उस समय बीमार थे, लिखा कि वह कहानी से इस अंश

को निकाल दें ताकि उसकी शक्ति और महत्ता बढ़ जाय। केवल किसानों के जीवन से सम्बन्ध रखने वाला उपन्यास का संक्षिप्त संस्करण वस्तु-संगठन और चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अधिक सफल बन पड़ा है। अन्य कृषि-सम्बन्धी उपन्यासों में स्वर की जिस दृढ़ता का अभाव है, वह इस उपन्यास में नहीं है। जबकि अन्य उपन्यासों में समस्त देहात ही ज़मींदारों, पूँजीपतियों और पुलिस के द्वारा कुचला हुआ है, इस उपन्यास में नायक ही साहूकारों और पूँजीपतियों का शिकार है। समूह की अपेक्षा व्यक्ति पर ज़ोर दिया गया है, जिससे कथावस्तु और पात्र के पारस्परिक सम्बन्ध का नया ही रूप प्रकट होता है। यहाँ कहानी के भीतर से अन्तिम विकास चरित्र का ही होता है, जब कि आरम्भिक उपन्यासों में लेखक कथावस्तु और सामाजिक उद्देश्य के नीचे दबा रह गया है। उपन्यास में सामाजिक उद्देश्य को कम स्पष्ट किया गया है और उसे अपेक्षाकृत अधिक सांकेतिक बनाया गया है। इस उपन्यास में प्रेमचन्द का वास्तविक रूप प्रकट हुआ है। इसमें उनके परिपक्व जीवनानुभव और रचना-सम्बन्धी यथार्थवादी शिल्प-विधान पर उनके अधिकार के दर्शन होते हैं। वे अब पहले की तरह घटनाओं का जाल नहीं बिछाते जो कि पाठकों की भावनाओं को उत्तेजित करके उनको विस्मय में डाल सके। इस उपन्यास में नाटकीय प्रवृत्ति कम दिखाई देती है। इस प्रवृत्ति पर उन्होंने इतना विलक्षण अधिकार कर लिया है कि इसमें बहुत कम ऐसी बातें मिलेंगी, जो विवेकशील पाठक को असम्भव प्रतीत हों। 'गोदान' अत्यन्त प्रौढ़ कृति है और हिन्दी कथा-साहित्य के यथार्थवादी शिल्प-विधान की प्रगति की सूचक है।

इस उपन्यास को छोड़कर प्रेमचन्द ने कहीं भी वास्तविक दृष्टि से उल्लेखनीय पात्र की सृष्टि नहीं की। कारण, उनका उद्देश्य चरित्र-चित्रण न होकर सुधार करना है। वे नैतिक या सामाजिक समस्याओं में अधिक रुचि दिखाते हैं, मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं और असंगतियों में नहीं। क्षेत्र विशाल है, लेकिन उच्च-मध्य वर्ग के चित्रण में वे शायद ही कभी

सफल हुए हों। अपनी असन्दिग्ध प्रतिभा के होते हुए भी वे अमर पात्रों की सृष्टि क्यों नहीं कर सके, इसका प्रधान कारण यह है कि वे कला के कार्य के सम्बन्ध में ग़लत धारणा रखते थे। आदर्शवाद के आग्रह के कारण उन्होंने ऐसे नायक की सृष्टि की जो शुद्ध मानव होने के लिए आदर्शों से अत्यधिक प्रेरित है और उसके साथ के अन्य पात्रों का जमघट भी इसलिए खड़ा किया है कि जिससे अपने आदर्शवाद को पूर्णता प्रदान की जा सके। उनके नायक मानव से अधिक देवता हैं। सूरदास, प्रेमशंकर, चक्रधर, अमरकान्त आदि सभी पवित्रात्मा हैं, उनका ध्येय एकाग्रचित्त होकर गरीबों की सेवा करना है। होरी इसका अपवाद है और यही कारण है कि वह एक अमर सृष्टि है। वे अपने पात्रों से आदर्श व्यवहार करते हैं और इस बात का अनुभव नहीं करते कि मानव-प्रकृति में कमज़ोरियाँ होती हैं तथा मानव-हृदय में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों ही रहती हैं। वे असहयोग और सविनय अवज्ञा-भंग आन्दोलनों से इतने अधिक प्रभावित हैं कि वे भी उसी आदर्शवाद के प्रवाह में वह जाते हैं, जिससे इन आन्दोलनों के नेता परिचालित थे। कला और चरित्र-चित्रण के प्रति उनका जो यह दृष्टिकोण बन गया था उसके लिए उनके वर्ग की सुधारवादी विचारधारा भी उत्तरदायी है।

मध्य वर्ग के पात्रों के कथोपकथन में कोई वैयक्तिक विशेषता नहीं है। कभी-कभी उनकी अत्यधिक लम्बाई उनकी स्वाभाविकता को नष्ट कर देती है। कभी व्याख्या करने की दृष्टि से लेखक उनकी गति में बाधा उत्पन्न कर देता है और इस प्रकार उनमें बहुत थोड़ा हास्य, व्यंग्य या ताज़गी रह जाती है। कभी वे उन्नीसवीं शताब्दी के उन उपन्यासों के शिल्प-विधान का भी उपयोग करते हैं, जिनके वार्तालापों में सावधानी, संयम और प्रयास स्पष्ट परिलक्षित होते हैं। फिर उनमें तर्क और उपदेशों की भरमार भी रहती है। किसानों और ग्रामीणों की बोली मध्य वर्ग के पात्रों के कथोपकथनों से बिलकुल अलग और सजीव होती है। दुहरी और तिहरी कथा की उस पुरानी शैली पर, जो

घटनाओं की प्रगति में बाधक होती है और जो पाठक के ध्यान को भंग करती है, विस्तार से पहले ही विचार किया जा चुका है। चरित्र-चित्रण और वस्तु-संगठन के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हुए उन्होंने मुझे लिखा था—"मानव-चरित्र में जो कुछ भी सुन्दर और मानवोचित तत्त्व है, उसी के उद्‌घाटन की दृष्टि से मैं अपनी कथावस्तु का निर्माण करता हूँ। यह कार्य अत्यन्त रहस्यमय है क्योंकि कभी इसकी प्रेरणा मुझे किसी व्यक्ति से मिलती है, कभी किसी घटना से और कभी किसी स्वप्न से। लेकिन मैं अपनी कहानी का आधार मनोवैज्ञानिक ही रखता हूँ। मित्रों के सुझावों से लाभ उठाने के लिए मैं सदा तैयार रहता हूँ। यद्यपि मैं कल्पना का भी पर्याप्त पुट देता हूँ तथापि मेरे अधिकांश पात्र यथार्थ जीवन से लिये गए हैं। जब किसी पात्र का यथार्थ में अस्तित्व नहीं होता तब वह छायामात्र, अनिश्चित और अविश्वसनीय होकर रह जाता है।"

उपन्यास और कहानी के शिल्प-विधान पर प्रेमचन्द के स्वयं अपने विचार हैं। साहित्य में यथार्थवाद और आदर्शवाद के स्वभाव और कार्य पर उन्होंने गहराई से प्रकाश डाला है। अपने उपन्यास-कला-सम्बन्धी एक गम्भीर लेख में वे कहते हैं कि उपन्यास का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है और वह पूरे जीवन को स्पर्श कर लेता है। इतिहास-प्रेमी उपन्यासकार को अपनी कृति में ऐतिहासिक विकास के मौलिक सिद्धान्तों के प्रकट करने के लिए पर्याप्त अवकाश मिलता है; दर्शनशास्त्र में रुचि रखने वाला उपन्यासकार अपने उपन्यास में जीवन की आधारभूत धारणाओं को व्यक्त कर सकता है; और जीवन के प्रति काव्यात्मक दृष्टिकोण रखने वाला उपन्यासकार साहित्य की इस लचीली विधा द्वारा अपनी कल्पनात्मक शक्ति का प्रदर्शन कर सकता है। इसमें समाजशास्त्र, विज्ञान और मानव-विज्ञान के लिए भी स्थान है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि उपन्यास में लेखक मनमानी स्वतन्त्रता और अवकाश पाता है। क्षेत्र की यह विशालता ही उसे कुछ नियमों और परम्पराओं में भी बाँध

देती है। जो यात्री मार्गहीन और घने जंगल से गुजरता है उसकी अपेक्षा परम्पराओं और सीमाओं की गलियों से गुजरने वाला यात्री सुगमता से अपने लक्ष्य पर पहुँच सकता है।

लेखक कहता है कि उपन्यासकार की सबसे बड़ी विशेषता उसकी सृजन-शक्ति है। कोई भी लेखक, जिसमें कल्पना का अभाव है, अपने पात्रों में जीवन नहीं फूँक सकता। साथ ही वे इस बात को दृढ़ता से मानते हैं कि शैली सादी होनी चाहिए। अभिव्यक्ति की अस्पष्टता विचारों की गम्भीरता नहीं है। किसी कलाकृति को, विशेषकर उपन्यास को, पाठकों की पहुँच के बाहर बना देना अनुचित है। उपन्यासकार के लिए यह आवश्यक है कि वह कहानी में रोचक घटनाओं की श्रृङ्खला का निर्माण करे, क्योंकि इन घटनाओं का कार्य कथावस्तु को आगे बढ़ाना और चरित्र को प्रकाशित करना होता है। ऐतिहासिक उपन्यासों में कथावस्तु के तत्त्व पर ज़ोर दिया जा सकता है, परन्तु सामयिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले उपन्यासों में लेखक का उद्देश्य मानव-मन की गहराई का दिग्दर्शन कराना होता है। यह सच है कि उपन्यास के लिए कोई भी सामग्री अच्छी है, लेकिन वस्तुतः उपन्यास सामग्री की अपेक्षा प्रतिपादन-शैली से ही महानता प्राप्त कर सकता है। साथ ही कुछ कथासूत्र ऐसे भी हैं जो स्वयं इतने महत्त्व के होते हैं कि उनके द्वारा स्वभावतः प्रतिपादन-शैली और जीवन का चित्रण गम्भीर बन जाते हैं। नायकों के चुनाव के सम्बन्ध में प्रेमचन्द का कहना है कि उनका उच्च वर्ग का होना आवश्यक नहीं है। उन्होंने उदाहरणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि सामान्य व्यक्ति भी कहानियों के नायक और प्रमुख पात्र होने की क्षमता रखते हैं। सुख और निराशा, प्रेम और ईर्ष्या, घृणा और लोभ आदि में ये निम्न वर्ग के पात्र भी उसी कल्पनात्मक तीव्रता से काम लेते हैं जिससे कि समाज के उच्च वर्ग के व्यक्ति काम लेते हैं। जिन पुराने ढंग के नायकों को प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में आदर्श बनाकर प्रस्तुत किया है उनकी अपेक्षा सूरदास और होरी में विकास की

सम्भावनाएँ अधिक दिखाई देती हैं।

सभी महान् साहित्यों के कार्य के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के निश्चित विचार हैं। उसे मनुष्य के भीतर उच्च भावनाएँ पैदा करनी चाहिए और उसकी आध्यात्मिक शक्तियों को जागृत करना चाहिए, जिससे कि वह जीवन की कठिनाइयों का सामना करने की क्षमता प्राप्त कर ले। वे न तो उस शुद्ध आदर्शवाद को मानते हैं, जो जीवन के कठोर यथार्थ से पलायन है और न उस प्राकृतवाद को मानते हैं, जो जीवन की कुरूप और घृणित दिशा को लेकर ही चलता है। उन्होंने सदैव दोनों के सुखद सामञ्जस्य का समर्थन किया है। सन् १९३६ में प्रगतिशील लेखक-सम्मेलन के सभापति-पद से भाषण देते हुए उन्होंने साहित्य में आदर्शवाद और यथार्थवाद के सापेक्षिक महत्त्व पर पर्याप्त प्रकाश डाला था। उन्होंने बताया था कि मनुष्य गुणों और अवगुणों का समूह है। यहाँ तक कि सूर्य में भी धब्बे हैं। यथार्थवाद में मानव की कमज़ोरियों का सच्चा चित्र रहता है। यदि कोई लेखक इन कमज़ोरियों का चित्रण घृणित-से-घृणित रूप में करेगा तो वह निश्चय ही मनुष्य की अच्छाई के प्रति विश्वास को तोड़ने का ही काम करेगा। फिर बुराइयों में बुराइयों के अतिरिक्त और क्या देखा जा सकता है? ऐसा यथार्थवाद जीवन के विकास को रोक देगा। आदर्शवाद जीवन को ऊँचा उठा सकता है। यह मनुष्य को उपवन की स्वच्छ वायु में साँस लेने योग्य बना सकता है। यह उसके भीतर की सर्वश्रेष्ठ वस्तु को बाहर ला सकता है और उसके भीतर विश्वास और श्रद्धा जगा सकता है। लेकिन आदर्शवाद में खतरा भी है। वह उसे जीवन की यथार्थताओं से दूर फेंक सकता है। एक बार प्रेमचन्द ने अपने एक घोर आदर्शवादी मित्र को लिखा—"यह सच है कि चिड़िया आकाश में बहुत ऊँचे उड़ती है लेकिन उसे दाने के लिए पृथ्वी पर ही आना पड़ता है।" आदर्शवाद और यथार्थवाद का पारस्परिक सामञ्जस्य ही उनकी कला का आधार है। उनके अनुसार साहित्य नैतिक और सामाजिक कार्य करता है। यह जीवन के संघर्ष का स्पष्टी-

करण करता है। वह जीवन में ऊपर से दिखाई देने वाली विभिन्नता के भीतर निहित एकता का दर्शन कराता है। श्रेष्ठ साहित्य का उद्देश्य अनुकूल और प्रतिकूल वस्तुओं तथा सत् और असत् के द्वन्द्व से उत्पन्न समन्वय और महान् सत्य की प्रतिष्ठा करना है। वे इस बात को नहीं मानते कि यथार्थवाद और आदर्शवाद में कोई विरोध है। वे उस प्राकृतवाद को घृणा करते हैं, जो केवल मनुष्य की कमज़ोरियों का ही चित्रण करता है और उसे सेवा और त्याग के उच्च जीवन की प्रेरणा नहीं देता। यह मनुष्य की महत्ता और शक्ति में उसके विश्वास को नष्ट करता है। लेखक कला में उस यथार्थवाद के समर्थक हैं, जो आदर्शवाद से युक्त हो।

प्रेमचन्द की चरित्र-सम्बन्धी धारणा स्पष्ट है। वे पात्रों के व्यक्तित्व में वीरता को देखकर मुग्ध हो जाते हैं। वे विकास और विस्तार की अदृश्य शक्तियों को अवश्य ही प्रकट करते हैं। चरित्र की इस मौलिक धारणा के कारण वे अपराध और हत्या के लिए प्रोत्साहित करने वाले जासूसी उपन्यासों की घोर निन्दा करते हैं। कारण, ये उपन्यास भलाई करने की इच्छा और बुराई से लड़ने की भावना को मार देते हैं।

जहाँ तक सामान्य चरित्र-चित्रण का प्रश्न है प्रेमचन्द इस बात के पक्षपाती हैं कि मनुष्य का चित्र दिव्य, गम्भीर और विकासमय हो, जिससे कि पाठक उसे अपना सकें। यह लेखक की सृजन-शक्ति पर निर्भर है। यदि लेखक धीरे-धीरे पात्रों के साथ घनिष्ठता प्राप्त करता जायगा तो इससे वह उनके मन के रहस्य का उद्घाटन कर सकेगा। जैसे ही उनका विकास रुक जाय वैसे ही उनको कहानी से हटा देना चाहिए। उपन्यास का विशेष सम्बन्ध उनके विकास से है। जितने भी पात्र स्थिति-शील होते हैं वे सब कलात्मक दृष्टि से असफल होते हैं। अपने विचारों के अनुकूल प्रेमचन्द उनके व्यक्तित्व की गतिशीलता का चित्र तो अंकित करते हैं लेकिन कभी-कभी वे मनोवैज्ञानिक परिवर्तन की प्रक्रिया का वर्णन करना भूल जाते हैं। गतिशीलता उनके भीतर से नहीं आती,

वह उन पर ऊपर से लादी जाती है। वे अपने पात्रों को विकसित और महान् देखना चाहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनके उपन्यासों के पात्र सहसा और असामयिक रूप-परिवर्तन कर लेते हैं। उनका कहना है कि यदि लेखक कहानी के आरम्भ से अन्त तक का किसी पात्र का मानसिक चित्र बना ले तो उसका काम बहुत सरल हो जाय। ऐसे परिवर्तन वातावरण के अनुकूल होने चाहिएँ। वे चरित्रों की भिन्नता के भी समर्थक हैं। चूँकि यथार्थ जीवन में दो व्यक्ति बिलकुल समान नहीं होते, इसलिए साहित्य में भी उन्हें एक-दूसरे के समान नहीं होना चाहिए। यह सम्भव है कि वर्णन और कथोपकथन द्वारा उनके अन्तर को स्पष्ट कर दिया जाय लेकिन मूल अन्तर तो उनके चरित्र में होता है। प्रेमचन्द का कहना है कि मानव के मनोविज्ञान को स्पष्ट करने के लिए जहाँ तक सम्भव हो सके वर्णन से बचना चाहिए और कथोपकथन का उपयोग करना चाहिए। और कथोपकथन परिस्थिति के अनुकूल होने चाहिएँ, बँधे-बँधाए नहीं। पात्र द्वारा कहा हुआ प्रत्येक वाक्य उसके मानसिक विकास पर प्रकाश डालने वाला होना चाहिए। कथोपकथन स्वाभाविक, सरल और सांकेतिक होना चाहिए। वे उन लम्बे-लम्बे भाषणों को पसन्द नहीं करते जो लेखक से तो सम्बन्ध रखते हैं परन्तु पात्र से नहीं। वे स्वयं इस कमज़ोरी के शिकार थे और इस धारणा को बनाने से पहले वे अपनी बात विशेष रूप से कहा करते थे। उन्होंने भविष्यवाणी की थी कि हिन्दी-उपन्यास का भविष्य कठोर यथार्थवाद के हाथों में होगा। वह यथार्थ जीवन से इतना अधिक साम्य रखने वाला होगा कि वह मनुष्य का ऐसा जीवन-चरित्र बन जायगा, जिसमें उसकी जाति या पद का उल्लेख न हो। मनुष्य की महानता उसके तत्कालीन वातावरण को जीतने की क्षमता पर निर्भर होगी। मनुष्य के सम्बन्ध में यही महान् और प्रगतिशील धारणा उपन्यास के चरित्र-चित्रण का रूप निश्चित करेगी।

उपन्यास के शिल्प-विधान में प्रेमचन्द ने निश्चय ही एक बहुमूल्य

देन दी है। उनकी एक और देन है, जो उनके शिल्प-विधान और कला की देन से कम महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकती, और वह है उनकी सजीव और सशक्त गद्य-शैली। लेखक कभी भी हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी के झगड़े में नहीं पड़े और विद्रोह करने को तत्पर रहे। लेकिन प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों और कहानियों में इस बात को दिखा दिया कि कैसे इस समस्या को सुलझाया जा सकता है और कैसे बिना संस्कृतीकरण या फ़ारसीकरण किये स्वाभाविक, शक्तिशाली और विचार-पूर्ण गद्य लिखा जा सकता है। वाक्य-विकास की चुस्ती, कोमल और चुभने वाले हास्य का पुट, तीक्ष्ण कटाक्ष और कठोर व्यंग्य, सजीव चित्रण, घरेलू मुहावरे आदि उनके कथोपकथनों और धाराप्रवाह-वर्णनों की विशेषताएँ हैं। उनके कथोपकथन और वर्णन भविष्य में बहुत दिन तक विचारोत्तेजक गद्य के नमूनों के रूप में जीवित रहेंगे। उनकी गद्य-शैली भावना और विचार से परिपूर्ण है। कहीं-कहीं वह निर्जीव और फीकी भी होती है, लेकिन जिस लेखक ने इतने अधिक परिमाण में साहित्य-सृजन किया हो उसके लिए यह कोई बड़ा दोष नहीं है। प्रेमचन्द महान् स्रष्टा थे। उन्होंने केवल हिन्दी कथा-साहित्य की ही नींव नहीं डाली वरन् एक गद्य-शैली का भी निर्माण किया।

: ६ :

कहानियाँ

प्रेमचन्द उपन्यासकार के नाते तो महान् हैं ही, कहानीकार के नाते और भी महान् हैं। यह सच है कि पीछे चलकर उनका उपन्यासकार ही अधिक प्रकाश में आया, लेकिन पहले वे कहानीकार ही थे और इस क्षेत्र में उनकी सफलता और लोकप्रियता अद्वितीय है। वे कहानी-लेखन-कला के अग्रदूत थे और उन्होंने तीन सौ के लगभग कहानियाँ लिखीं, जिनमें से कई साहित्य की अमर निधि हैं। उन्होंने कहानी को बिलकुल नया रूप दिया। वे पहले व्यक्ति थे, जो सामग्री के लिए गाँवों की ओर गये और जिन्होंने सीधे-सादे ग्रामीणों के घटनाहीन जीवन को अपनी कहानियों का विषय बनाया। उन्होंने इन सीधे-सादे धरती-पुत्रों, क्लर्कों और बड़े-बड़े व्यापारियों के मामूली मुन्शियों के मन की हलचल को व्यक्त किया। वे उनके संघर्षों, प्रलोभनों और कमज़ोरियों, उनकी आशाओं और आशङ्काओं, उनकी सहज धार्मिकता और अन्धविश्वासों से भली भाँति परिचित थे। किसान का मन उनके लिए खुली हुई पुस्तक के समान था।

प्रेमचन्द की कहानियों के सम्बन्ध में उचित धारणा बनाने से पहले आवश्यक है कि हम साहित्य के इस अंग-विकास को अच्छी तरह समझ लें। निजी अस्तित्व की दृष्टि से साहित्य में कहानी का विकास नया ही है, यद्यपि प्राचीन साहित्य में सभी प्रकार की और सभी विषयों की कहानियाँ मौजूद हैं। इसके लम्बे इतिहास और धीरे-धीरे होने वाले विकास की दृष्टि से यह सम्भव नहीं है कि कहानी के प्रवर्त्तक के रूप में

किसी एक व्यक्ति का नाम लिया जा सके। जो ऐतिहासिक काल से पहले से चली आ रही है और जिससे पूर्व और पश्चिम दोनों ही परिचित रहे हैं, जिसका आरम्भिक रूप मौखिक रहा है और जो नाटक, निबन्ध और उपन्यास के मूल में भी विद्यमान है, उस कहानी का जन्म आत्म-प्रकाशन करने वाले मनुष्य की मौलिक रचनात्मक शक्ति से हुआ है। इसका यह अर्थ नहीं है कि साहित्यिक विधा के रूप में कहानी में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। आरम्भिक कहानियाँ सीधी-सादी, वर्णनात्मक और कथावस्तु से रहित हैं। उनमें चरित्र-चित्रण पर बहुत कम ज़ोर दिया गया है और उनमें तारतम्य या एकता भी नाममात्र को है। उनमें कथन के ढंग की अपेक्षा तथ्य पर विशेष ज़ोर दिया गया है। आरम्भिक कहानी का रूप मौखिक होने से कहने वाला अपने आसपास बैठे श्रोताओं को कहानी सुनाया करता था। ऐसी कहानी में स्वभावतः ही घटनाओं और प्रसंगों का समावेश होगा। औद्योगिक परिवर्तनों के फलस्वरूप धीरे-धीरे वह मुद्रित रूप में सामने आई। जो कहानी सुनी नहीं जाती बल्कि पढ़ी जाती है, उसमें घटनाएँ कम हो जाती हैं और मनोवैज्ञानिकता बढ़ जाती है।

कहानी का आधुनिक रूप उन्नीसवीं शताब्दी में अमरीका में हाथॉर्न और पो, फ्रांस में बालज़ाक, जर्मनी में हॉफमैन तथा अन्य कलाकारों द्वारा प्रकाश में आया। आलोचकों द्वारा इस नये साहित्यिक रूप की विशेषताओं का उद्घाटन किया गया। कितने ही साहित्य-महारथियों द्वारा सफलता की कुञ्जियाँ बताई गईं। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यथार्थवाद और प्राकृतवाद के समावेश ने कहानी के क्षेत्र का विस्तार कर दिया। इसका कोई रूप नहीं था और किसी भी प्रकार आरम्भ की जा सकती थी। जब इसका रूप निश्चित हुआ तो यह नियमों में जकड़ दी गई तथा रूढ़ि का शिकार हो गई। अब वह बीच के रूप को छोड़कर फिर उन नियमों और प्रतिबन्धों से परे स्वतन्त्र हो रही है। विकास और परिवर्तन केवल जीवन के ही आवश्यक अंग नहीं हैं, वे कला के

भी आवश्यक अंग हैं।

प्रेमचन्द विदेशी लेखकों से बहुत अधिक प्रभावित थे, इसलिए उन्होंने साहित्य के एक विशिष्ट रूप में कहानी के शिल्प-विधान के सम्बन्ध में अपना मत बनाया। उन्होंने कहानी के क्षेत्र और कार्य के सम्बन्ध में अत्यन्त उच्च कोटि के निबन्ध लिखे। इन लेखों में प्रेमचन्द ने कहानी के सैद्धान्तिक और क्रियात्मक दोनों ही रूपों के सम्बन्ध में अपना निजी मत व्यक्त किया। अतीत युगों के साहित्य से उसके जन्म और विकास का इतिहास बताते हुए उन्होंने इस कहानी-कला की कुछ विशेषताएँ अपने काम के लिए निर्धारित कर ली थीं। इसके इतने अधिक प्रकार हो गए हैं कि व्यापक दृष्टि से देखने पर उसमें कितने ही विषयों का समावेश हो सकता है। आधुनिक कहानी की सीमा में प्रेम और साहस की कहानियाँ, कल्पना और रहस्य की कहानियाँ, जादू और सम्मोहन की कहानियाँ, भ्रमण और आश्चर्य की कहानियाँ, विज्ञान और रोमांस की कहानियाँ आदि अनेक प्रकार की कहानियाँ आ जाती हैं। एक लेख में कहानी की विशेषताएँ बताते हुए प्रेमचन्द ने कहा है कि कहानी की एक विशेषता उसका संक्षिप्त होना भी है। फिर जो कहानी जीवन और उसकी समस्याओं पर तथा पात्रों और परिस्थितियों पर उपदेश देते हुए चलती है वह कलात्मक दृष्टि से असफल रहती है। वे कहानी की सांकेतिकता के बारे में अत्यधिक सजग हैं और वे इस बात को भी जानते हैं कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लेखक को कितना कम कहना चाहिए। वे उपन्यास और कहानी को साहित्य के दो अलग-अलग रूप समझते हैं, इसलिए आवश्यक है कि कहानी में जटिल कथावस्तु न रखें। यदि ऐसा होगा तो कहानी का उद्देश्य नष्ट हो जायगा। चरित्र, कथावस्तु और वातावरण में से एक तत्त्व प्रधान होता है और शेष उसके अधीन रहते हैं। एक पत्रकार और निम्न-मध्य वर्ग के व्यक्ति होने के कारण प्रेमचन्द ने अनुभव किया कि उपन्यास उस वर्ग के मनोरञ्जन और ज्ञानवर्द्धन के लिए है, जिसके पास पर्याप्त

अवकाश है, जब कि कहानी उस वर्ग के लिए है जिसे जीवित रहने के लिए घोर संघर्ष करना पड़ता है। अपने उन पाठकों के सन्तोष के लिए, जो निम्न-मध्य वर्ग से सम्बन्ध रखते थे, उन्होंने चरित्र-चित्रण की बलि देकर भी कथावस्तु को बनाये रखा।

प्रेमचन्द कहानी-कला पर एक दूसरे लेख में लिखते हैं कि अपने विकसित रूप में कहानी का शिल्प-विधान पाश्चात्य लेखकों के ग्रन्थों से लिया गया है। चेखव और मोपासाँ को सर्वश्रेष्ठ कहानी-लेखक माना गया है। साहित्य के इस नये रूप का प्रयोग सबसे पहले बंगाली लेखकों ने किया। वे कहानी को दो भागों में बाँटते हैं—एक तो चरित्र-प्रधान कहानियाँ, जिनमें लेखक किसी मनुष्य के जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना का वर्णन करता है और दूसरी कथा-प्रधान कहानियाँ, जिनमें वह जीवन के मनोवैज्ञानिक सत्य को प्रकट करने के लिए कुछ घटनाएँ चुनता है। उन्होंने दोनों प्रकार की बहुत सी कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें उनका उद्देश्य जीवन के सर्वश्रेष्ठ अंश का प्रकाशन रहा है। कथावस्तु और चरित्र-चित्रण दोनों का ही उद्देश्य सामाजिक रहा है। अपनी आरम्भिक रचनाओं में उन्होंने चरित्र-चित्रण की अपेक्षा कथावस्तु पर विशेष ध्यान रखा है। इन कहानियों में घटनाओं और प्रसंगों की शृङ्खला पात्रों और विचारों को घेरे हुए है। सामाजिक ध्येय की ओर संकेत नहीं किया गया वरन् उसे प्रकट कर दिया गया है। विभिन्न प्रकार की रुचि रखने वाले पाठक बिना किसी आधार के उनकी जो इतनी अधिक प्रशंसा करते हैं इसका कारण यह है कि इन कहानियों में विचारों और पात्रों की अपेक्षा कथावस्तु की प्रधानता है तथा इनमें मध्यवर्गीय विचारधारा का समावेश है। मध्य वर्ग के दृष्टिकोण की विशेषता 'प्रतिकार' तथा 'जो जैसा करेगा वह वैसा ही भरेगा' की भावना है और यह उसके मस्तिष्क में बुरी तरह घर कर गई है।

'माता का हृदय' नामक कहानी, जो पहले प्रकार की कहानी है, एक माता के अपने पुत्र को कष्ट पहुँचाने वाले से बदला लेने के निश्चय

से सम्बन्ध रखती है। लेकिन जब उससे यह कहा जाता है कि वह अपने पुत्र के उत्पीड़क की हत्या कर सकती है तब उसका निश्चय हवा हो जाता है। यद्यपि कहानी चरित्र-प्रधान है लेकिन भोज का प्रबन्ध और एक अफ़सर के घर में नौकरानी के रूप में उसकी नियुक्ति आदि ऐसी घटनाएँ हैं, जो माता के चरित्र को दबा देती हैं। 'स्वर्ग की यात्रा' भी ऐसी ही कहानी है। इसमें बताया गया है कि कैसे एक स्त्री अपने धैर्य और सेवा से अपने पति को सुधार देती है। इस कहानी में कितनी ही असम्बद्ध घटनाएँ मिला दी गई हैं, जिनसे कि स्त्री का चरित्र अस्पष्ट हो जाता है। उनका प्रतिपाद्य विषय से भी सीधा सम्बन्ध नहीं है। कहानी के पहले और दूसरे भाग में पाँच वर्ष का अन्तर है। पहले भाग में भूल करने वाला पति अपनी माता से इसलिए झगड़ा करता है कि वह उसकी स्त्री के साथ दुर्व्यवहार करती है। उसकी वेदना का कारण उसके पूर्वजन्म के पाप हैं। उसके कष्ट का वर्णन करने के लिए उसके बच्चों की हैजे से मृत्यु दिखाई गई है। यह सदैव का जैसा अति नाटकीय प्रसंग है। ऐसे प्रसंगों से कहानी के प्रमुख ध्येय—चरित्र-चित्रण—का नाश हो जाता है। 'सत्याग्रह' में यह बताया गया है कि कैसे एक ढोंगी पण्डित मूर्ख जनता को ठगने के लिए तरकीबें सोच निकालता है। जिस हड़ताल का कहानी में वर्णन है, वह ऐसे लोगों के चरित्र के प्रकाशन के लिए उचित उपाय नहीं है। विलक्षणता और पागलपन के कारण कहानी की कलात्मकता नष्ट हो जाती है। 'नरक का मार्ग' कहानी में एक ऐसी स्त्री का चित्र है, जो अपने पति की क्रूरता का शिकार हो जाती है। वह इस जगत् को छोड़ देती है और धार्मिक जीवन बिताने लगती है। उसकी मृत्यु के पश्चात् वह अपने शून्य और प्रेमहीन जीवन से ऊब उठती है और वेश्या हो जाती है। सदा की भाँति वह अपने दुखों का कारण अपने पूर्वजन्म के पापों को मानती है। यह उसके चरित्र के उस अंश का यथार्थ चित्रण है, जो समय-समय पर घटनाओं से दब जाता है। 'दिवाला' एक ऐसे ज़मींदार की कहानी है, जो जनता

की घोर दरिद्रता और मार्मिक कष्ट को देखकर एकदम बदल जाता है। ज़मींदार के भीतर दया उत्पन्न करने के लिए एक दिवालिये से आत्महत्या कराई जाती है, जो कि उसका मित्र है। ज़मींदार के चरित्र को आदर्श बनाने के लिए कथावस्तु को, जो कि कहानी में प्रमुख है, बुरी तरह तोड़ा-मरोड़ा जाता है।

दूसरे प्रकार की जो कहानियाँ प्रेमचन्द ने लिखी हैं, उनमें पात्र और कथावस्तु पर विचारों को प्रधानता दी गई है। इनका उद्देश्य सामाजिक है। वे सामाजिक उद्देश्य को लेकर लिखते थे और उन्होंने कहानी को उन्नति और सुधार का साधन बनाया। उनके अनुसार कहानी का प्रमुख ध्येय पाठक को किसी घटना, किसी पात्र या किसी वातावरण द्वारा ऊँचा उठाने के लिए एक तीव्र विचार की अनुभूति करा देना मात्र है। उन्होंने कहा है—"कहानी को जीवन के किसी अंश पर प्रकाश डालना चाहिए, उसे आलोचना और उत्साह के साथ समाज की रूढ़ियों की परीक्षा करनी चाहिए, उसे मनुष्य की शिवं, सत्यं और सुन्दरम् की स्वाभाविक प्रवृत्ति को जागृत करना चाहिए।" इसका यह अर्थ नहीं कि कहानी या कला का उद्देश्य शिक्षा देना हो। पीछे चलकर प्रेमचन्द ने उपदेशात्मकता को छोड़ दिया था, लेकिन आरम्भिक कहानियों में जो सुधार-भावना थी उसे वे अन्त तक नहीं छोड़ सके।

उदाहरण के लिए 'उद्धार' कहानी में उस दहेज-प्रथा का विरोध किया गया है, जिससे लड़की के माता-पिता का जीवन संकटमय हो जाता है। वे बेचारे विवश होकर लड़की की शादी ऐसे व्यक्ति से करने को तैयार हो जाते हैं जो तपेदिक का मरीज़ है। लड़का शादी से पहले ग़ायब हो जाता है और आत्महत्या कर लेता है। लेखक पाठकों को इस सामाजिक बुराई पर दो पेज का पूरा भाषण देता है। 'नैराश्य' में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को तरजीह दिये जाने की भावना का तीव्र विरोध है। 'कायर' में व्यंग के साथ ऐसे युवक का चित्रण है जो एक लड़की से प्रेम करता है और छोड़ देता है। 'धिक्कार' और 'आधार' विधवा-

जीवन की कहानियाँ हैं। 'शान्ति' में भारतीय नारियों के विलायती बनते जाने का विरोध है। इस कहानी में एक मध्य वर्ग का पति अपनी पत्नी को अँग्रेजी ढंग अपनाने के लिए उकसाता है। वह अहंवादी और हठी हो जाती है और सेवा तथा त्याग के परम्परागत आदर्शों को भूल जाती है। यद्यपि शान्ति का चरित्र ठीक उतरा है तथापि कहानी में प्रस्तुतता विचार की है।

वातावरण-प्रधान कहानियों में प्रेमचन्द घटनाओं को ऐसे मनमाने ढंग से रखते हैं कि उनमें स्वतः डाल पर पके हुए फल का स्वाभाविक स्वाद नहीं होता, वरन् पाल में लगाकर ज़बर्दस्ती पकाये हुए फल का फीकापन होता है। 'शूद्रा' में एक निम्न वर्ग की विधवा की कठिनाइयों का वर्णन है, जिसके एक सुन्दर लड़की है। यह एक सीधी-सादी कहानी है, जिसमें लेखक ने वातावरण की उस एकता पर तनिक ध्यान नहीं दिया जिसका कि उत्पन्न करना उसका ध्येय है। 'कौशल' में बताया गया है कि कैसे एक पति अपनी पत्नी के उस हार को चुरा लेता है, जिसे उसकी पत्नी ने अहंभाव की तुष्टि के लिए उधार माँग लिया है। आरम्भ का मज़ाक अन्त में सच्ची बात हो जाती है। वातावरण-प्रधान कहानियों में नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करने की जो प्रवृत्ति होती है उसका इस कहानी में नितान्त अभाव है। 'दुर्गा का मन्दिर' एक ऐसी कहानी है जिसमें ग़रीबों की उस सहज ईमानदारी का वर्णन है, जिसे कि वे बेईमानी पर विजय पाने के लिए काम में लाते हैं। एक ईमानदार आदमी के मन के द्वन्द्व का चित्रण करने की एक मनोवैज्ञानिक परिस्थिति पैदा की गई है। भाननाथ उस धन से सन्तुष्ट नहीं है, जो कि उसे बाग में मिला है। इससे उसे पीड़ा पहुँचती है और वह बीमार हो जाता है। उसकी स्त्री चिन्तित होती है और उसके स्वास्थ्य की कामना लेकर मन्दिर में जाकर प्रार्थना करती है। वहाँ वह देखती है कि एक बुढ़िया प्रार्थना करती हुई कह रही है कि जिसने उसका धन लिया है, वह दुख पाएगा। वह उस बुढ़िया से कहती है कि उसके पति ने ही उसका धन

लिया है और उससे उसको क्षमा कर देने को कहती है। प्रेमचन्द एक शिक्षा देना चाहते हैं। जो विश्वास अमीरों में नष्ट हो गया है वह साधारण ग्रामीणों और ग़रीबों में अब भी जीवित है। धर्म अमीरों के लिए निरर्थक है परन्तु सीधे-सादे और ग़रीब लोगों के लिए वह अब भी सजीव यथार्थ है। 'निर्वासन' मेले में खोई एक स्त्री की कहानी है। वह एक सप्ताह के पश्चात् घर लौटती है और अपने पति से अपना सारा हाल कहती है, परन्तु वह उसके कथन पर विश्वास नहीं करता। वह उसके चरित्र पर सन्देह करता है और उसे घर से बाहर निकाल देता है। स्त्री बिना अधिक कुछ कहे-सुने उसकी बात मान लेती है। उसे घर से निकालकर सारा वातावरण अद्भुत बना दिया जाता है। इन सब कहानियों में प्रेमचन्द ने इस बात के लिए पूरी स्वतन्त्रता बरती है कि वे वर्णन के बीच में अपनी बात कहते चलें तथा उसकी प्रगति, पात्र और जीवन के सम्बन्ध में आलोचना करते चलें। उन्होंने कहानी में उपदेश और भावुकता के समावेश की परम्परा डाली। इससे यथार्थ का भ्रम और प्रभाव का ऐक्य नष्ट हो गया। लेकिन उन्होंने उस मध्य वर्ग की रुचि को सन्तुष्ट किया जो साहित्य का संरक्षक है। इन सभी कहानियों में समाज-सुधार की भावना व्याप्त है। वे कभी-कभी उस प्रचार के लिए कला का भी परित्याग कर देते हैं, जो कि उन आरम्भिक कहानियों का ध्येय है।

अनेक कहानियों में प्रेमचन्द ने राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न चित्र दिये हैं। 'समर यात्रा' नामक कहानी-संग्रह पर, जिसमें राष्ट्रीय आन्दोलन-सम्बन्धी कहानियाँ हैं, सरकार द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिया गया था। 'सुहाग की रात', 'होली का उपहार', 'आहुति' और 'भाड़े का टट्टू' असहयोग आन्दोलन के चित्र हैं। इस आन्दोलन में स्त्रियों ने भी प्रमुख भाग लिया है। लेखक राष्ट्रीय आन्दोलन के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करता है और युग के भावुकतापूर्ण स्वभाव का चित्र अंकित करता है। कहानियों में अत्यन्त तीव्र प्रभावोत्पादकता है और वे पाठक के

भीतर त्याग और देशभक्ति की भावना पैदा करती हैं। लेखक का प्रथम कहानी-संग्रह 'सोज़े वतन' था, जिसमें उसकी स्वतन्त्रता के प्रति उद्दाम भावना का दर्शन होता है। वे लेखक की श्रेष्ठतम कहानियाँ नहीं हैं। हड़ताल करने वालों और धरना देने वालों को पूर्ण स्त्री और पूर्ण पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है।

प्रेमचन्द ने ऐसी भी कहानियाँ लिखी हैं, जिनका सम्बन्ध पशुओं के स्वभाव से है। कुत्ता, बैल और गधा उनके प्रिय पशु हैं। 'पूर्व संस्कार', 'दो बैलों की कथा' और 'दूध का दाम' आदि कहानियाँ बैल और गधे से सम्बन्ध रखती हैं। 'स्वत्व रक्षा' का विषय घोड़ा है। इन सभी कहानियों का उद्देश्य मनोरंजन है। इनमें कल्पना की छटा दर्शनीय है। इनमें मनोवैज्ञानिक तत्त्व और जीवन की सामान्य आलोचना का भी अभाव नहीं है। उनका विषय न तो सामाजिक है और न वे जीवन की किसी स्थिति का चित्र देती हैं। प्रेमचन्द ने कुछ हास्यप्रधान कहानियाँ भी लिखी हैं। हास्य या तो किसी पात्र के अत्युक्तिपूर्ण वर्णन से पैदा होता है या कथावस्तु से ही उत्पन्न किया जा सकता है, या जिस परिस्थिति में पात्र रखे जाते हैं उसीसे उसका जन्म हो सकता है। इनमें से कुछ कहानियों का हास्य लेखक के कौशल का परिणाम है। 'शतरंज के खिलाड़ी' में दो नवाबों का वर्णन है, जो उन्नीसवीं शताब्दी के पतित आभिजात्य के प्रतिनिधि हैं। वे अपने आसपास होने वाले परिवर्तनों से बिलकुल बेखबर हैं। वे शतरंज के खेल में डूब जाते हैं। खेल का अन्त द्वन्द्व-युद्ध में होता है और वे तलवारें खींच लेते हैं। 'लाटरी' एक दूसरी हास्य-रस की कहानी है, जिसमें मज़ाक और व्यंग को आधार बनाया गया है। इसमें बताया गया है कि कैसे दो मित्र घुड़दौड़ में सम्मिलित दाँव लगाते हैं, कैसे वे हवाई किले बनाते हैं और कैसे एक-दूसरे के प्रति बुरी भावनाएँ रखना आरम्भ करते तथा एक-दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखने लगते हैं। इससे वे परस्पर अविश्वास करने लगते हैं। प्रेमचन्द ने मनुष्य की धन की लालसा पर व्यंग किया है।

प्रेमचन्द की प्रारम्भिक कहानियाँ अपने विषय और रूप की दृष्टि से द्विवेदी-युग के घरेलू जीवन के कथा-साहित्य के आधार पर लिखी गई हैं। वे जीवन का बहुत कम चित्रण करते हैं परन्तु उसकी भूमिका के लिए पर्याप्त प्रयत्न करते हैं। वे कहानी को स्वप्न-जगत् से निकालकर वास्तविक जगत् में लाते हैं और उसके विषय को सामाजिक तथा कथा-वस्तु को विश्वसनीय बना देते हैं। कहानी इसी जगत् की वस्तु हो जाती है। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि कैसे वे अपनी कहानियों में उस समस्त सामाजिक ढाँचे का चित्रण दे देते हैं, जो कि पाठक को अपनी अनेकरूपता से किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना देता है।

प्रेमचन्द ने समाज से बहिष्कृत लोगों को भी नहीं भुलाया है। किसान काफ़ी गरीब है लेकिन एक ऐसा भी वर्ग है, जो किसानों से भी अधिक गरीब है। सच तो यह है कि समाज में वह मनुष्य ही नहीं समझा जाता। वे किसी वर्ग के नहीं हैं क्योंकि वर्ग का अर्थ है संगठन, भले ही वह कितना ढीला-ढाला क्यों न हो। समाज से बहिष्कृत लोग बिलकुल असंगठित-से हैं। उनमें से कुछ हैं—अछूत, भूमिहीन मज़दूर, भिखारी, अनाथ और आवारा। वे किसी राजनीतिक आन्दोलन में भाग नहीं लेते और वे अपने अधिकारों के लिए भी नहीं लड़ते, क्योंकि उन्हें अपनी स्थिति का ज्ञान ही नहीं है। प्रेमचन्द उनके अस्तित्व की अव-हेलना नहीं करते। वे घोर यथार्थवादी के रूप में उनके जीवन के चित्र प्रस्तुत करते हैं, जो हमारे ऊपर आज तीक्ष्ण प्रभाव डालते हैं।

'कफ़न' नामक कहानी, जो विश्व की श्रेष्ठतम कहानियों में गिनी जा सकती है, ऐसे तीन आदमियों से सम्बन्ध रखती है। उनके जीवन की एक भावना के चित्रण और वर्णन की कला की दृष्टि से यह अद्वितीय है। वे अपने वातावरण से नितान्त भिन्न हैं। घीसू एक व्यक्ति-मात्र नहीं है, वह समाज से बहिष्कृतों का प्रतिनिधि है, जिसका पीड़ित जीवन उसे भाग्यवादी, कठोर और जीवन के दुखों की ओर से उदासीन बना देता है। उसका लड़का माधव उसका सच्चा प्रतिरूप है। वे दोनों

आलसी हैं। वे बाहर न जाने के लिए आलू और मटर चुराते हैं। वे हाथ से बहुत कम काम करते हैं। अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष का उनके लिए कोई मूल्य नहीं है। वे नैतिक दृष्टि से बिलकुल गिर गए हैं। वे देख चुके हैं कि किसान घोर श्रम करता है पर उसे कुछ भी नहीं मिलता, जब कि अमीर आदमी कुछ नहीं करता और सब-कुछ पा लेता है। उन्होंने अनुभव किया है कि भूखों ही मरेंगे और यदि वे भूखों ही मरेंगे तो वे क्यों अपने हाड़ पेलें। अन्त में वे यह सोचकर सन्तोष कर लेते हैं कि कोई उनका शोषण नहीं कर रहा। जीवन के प्रति इसी दृष्टि-कोण के कारण वे काहिल, निश्चिन्त और लापरवाह, पशु और हृदयहीन बन जाते हैं।

माधव की पत्नी उन सबको खिलाने का भार लेती है। बुधिया ने परिवार को सम्पन्न बना दिया है। कहानी का आरम्भ उसकी प्रसव-पीड़ा से होता है। घीसू और माधव उसके पास नहीं जाते। उनमें से प्रत्येक यह समझता है कि भुनते हुए आलुओं के पास जो भी उनमें से रहेगा, अधिक खा जायगा। यह भाग्य की विडम्बना है कि जो स्त्री घर में समृद्धि लाई वही प्रसव की वेदना से छटपटाकर मर जाती है और इन दोनों में से कोई उसके पास नहीं जाता। घीसू अन्तिम संस्कार के लिए पैसे इकट्ठे करता है। उनके पास उसके शव को जलाने के लिए पर्याप्त लकड़ी है। ज़रूरत है एक कफ़न की, लेकिन जिस समय वह जलाई जायगी उस समय बिलकुल अंधेरा होगा और कोई कफ़न की ओर न देखेगा। जिसको तन ढकने के लिए जीवन-भर चिथड़े भी नसीब न हुए उसको मरने पर नया कफ़न मिले यह उसका उपहास करना होगा। माधव कहता है कि वह तो शव के साथ ही जला दिया जायगा। वे एक ताड़ीखाने के सामने पहुँचते हैं। वे उसमें शराब पीते हैं। घीसू अत्य-धिक प्रसन्नता का अनुभव करता है और कहता है—"हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है तो क्या उसे पुन्न न होगा?" माधव भी समर्थन करता है—"जरूर-जरूर होगा। भगवान्! तुम अन्तरजामी हो। उसे

बैकुण्ठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आसीरवाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला है, वह कभी उमर भर न मिला था।"

प्रेमचन्द ने माधव का चरित्र एक सफल चित्रकार की भाँति बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। यह उनकी अमर कृति है। अकेली 'कफ़न' कहानी उन्हें श्रेष्ठतम लेखकों की श्रेणी में पहुँचा देती है। यह शक्तिशाली कहानी है, जो क्रूर व्यंग्य और सात्विक क्रोध से पूर्ण है। लेखक कहता है कि इस प्रसंग में कोई ऐसी अनहोनी बात नहीं थी क्योंकि यह एक ऐसे समाज की बात है, जहाँ अधिकांश व्यक्तियों का जीवन इन व्यक्तियों-जैसा ही बीतता है, जहाँ धूर्त और बेईमान लोग गरीबों के श्रम पर मोटे होते रहते हैं।

'पूस की रात' भी वैसी ही घोर दरिद्रता और भूमिहीन मज़दूरों तथा उनकी लगान अदा करने की असमर्थता से सम्बन्ध रखने वाली कहानी है। एक किसान-मज़दूर जाड़े की रात में ठण्ड से काँप रहा है। वह कम्बल नहीं खरीद सकता। ठिठुराने वाली ठण्ड उसे इधर-उधर चलने योग्य नहीं रहने देती और वह जंगली गायों से अपने खेत की रक्षा नहीं कर सकता। इस कहानी में लेखक ने गठन और तात्कालिक प्रभाव की दृष्टि से ऐसी सफलता प्राप्त की है, जो विश्व के कहानी-लेखकों में मुश्किल से ही मिल सकती है। मोपासाँ समय और कार्य की परम्परागत एकता का पालन करके इस संक्षिप्तता को प्राप्त करता है। प्रेमचन्द ने समाज से बहिष्कृत ऐसे लोगों की दरिद्रता का निर्दयता से वर्णन किया है। इन कहानियों में उनके कष्टों और पीड़ाओं के चित्रण में प्रेमचन्द ने जिस संयम से काम लिया है उससे ये कहानियाँ सामाजिक अन्याय और आर्थिक शोषण के विरुद्ध एक शक्तिशाली जिहाद बन जाती हैं। सदियों के अपमान ने उनके गर्व, भावुकता और मानवीय गौरव की चेतना का नाश कर दिया है। इसने मनुष्यों को कुत्तों से भी बदतर बना दिया है, यहाँ तक कि ठोकर लगाने पर कुत्ता भी काटता है परन्तु अछूत ब्राह्मणों के उन पैरों को चूमता है जो कि उसे कुचलते हैं।

अपने कहानी-लेखक के अन्तिम समय में प्रेमचन्द ने शिल्प-विधान में पर्याप्त सुधार कर लिया था और कहानी के ध्येय को भी बदल दिया था। पाश्चात्य प्रभाव के कारण कहानी जीवन के निकट आ गई है। अब प्रभाव की एकता को नष्ट करने वाली घटनाओं के वर्णन की आवश्यकता नहीं है। इस प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए लेखक कम-से-कम आलोचना करता है और अधिक-से-अधिक संकेत से काम लेता है। अब कहानी घटनाओं पर आधारित नहीं रहती; अब वह गम्भीर मनोवैज्ञानिक अनुभव को लेकर चलती है। ऐसी कहानी का पहला कार्य चरित्र के परिवर्तन की झलक देना है, उसका पूरा विकास दिखाना नहीं। कहानी के क्षेत्र में प्रेमचन्द ने महान् सफलता प्राप्त की है और वे साहित्य के इस नये रूप के बिना किसी ननुनच के महानतम लेखक कहे जा सकते हैं।

: १० :

सामाजिक उद्देश्य

प्रेमचन्द ने पाठकों के मनोरञ्जन के लिए स्त्रियों और पुरुषों की वासना तथा प्रेम की समस्या वाली कहानियों के प्रति उत्पन्न जिज्ञासा को शान्त करने के लिए उपन्यास और कहानियों की रचना नहीं की। कला की उनकी भावना बड़ी ऊँची थी। जीवन की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं के सम्बन्ध में उनके जो विचार थे, उनको व्यक्त करने का साधन ही वे कला को समझते थे। यही कारण है कि उनके उपन्यासों में सामाजिक उद्देश्य और सामाजिक आलोचना का समावेश है और वे मौलिक सामाजिक समस्याओं पर आधारित हैं। थॉमस हार्डी मानव-चरित्र के द्वारा भाग्य या भावी के विचार को व्यक्त करता है और उपन्यास के दूसरे तत्त्व इसी के अधीन रहते हैं। इसी प्रकार प्रेमचन्द भी सामाजिक और आर्थिक समस्याओं को प्रमुखता देते हैं और ये समस्याएँ कथावस्तु, पात्र, वर्णन तथा कहानी के अन्य तत्त्वों पर शासन करती हैं। वे इस संसार के सामाजिक दार्शनिक हैं और उनका मूल उद्देश्य उस समाज के क्रमिक विकास का प्रदर्शन करना है, जो सामाजिक आर्थिक विषमता और राजनीतिक दासता पर आधारित है। वे एक ऐसी समाज-व्यवस्था का निर्माण करना चाहते हैं, जिसमें न ज़रूरतें पूरी करने में कठिनाई होगी और न किसी प्रकार का भय होगा। वे कुछ-कुछ समाजवादी हैं लेकिन उनका समाजवाद कुछ शुद्ध बौद्धिक विश्वास पर टिका है और कुछ ऊँचे प्रकार की भावुकता पर। उनके उपन्यास किसानों और मज़दूरों के सामन्ती और आभिजात्यवर्ग

के सभी प्रकार के शोषण के खिलाफ़ एक नैतिक जिहाद है। उनका समाजवाद भी मानव-व्यक्तित्व के प्रति महान् आदर पर आधारित है। वह इसमें विश्वास करते हैं कि सबको समान अवसर मिले। उनके उपन्यासों में समानता के इस आदर्श को निरन्तर दुहराया गया है। मुझको लिखे गए एक पत्र में उन्होंने कहा—"हमारा उद्देश्य जनमत तैयार करना है इसलिए मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूँ। अच्छे तरीकों के असफल होने पर ही क्रान्ति होती है। मेरा आदर्श है हरेक को समान अवसर का प्राप्त होना। इस सोपान तक विकास से कैसे पहुँचा जा सकता है, इसका निर्णय लोगों के आचरण पर निर्भर है। जब तक हम व्यक्तिगत रूप से उन्नत नहीं हैं तब तक कोई भी सामाजिक व्यवस्था आगे नहीं बढ़ सकती। क्रान्ति का परिणाम हमारे लिए क्या होगा, यह सन्देहास्पद है। हो सकता है कि वह सब प्रकार की व्यक्तिगत स्वाधीनता को छीनकर तानाशाही के घृणित रूप में हमारे सामने आ खड़ा हो। मैं सुधार के पक्ष में तो हूँ, उसे नष्ट करने के पक्ष में नहीं। यदि मुझे यह विश्वास हो जाता और मैं जान लेता कि नाश से हमें स्वर्ग मिलेगा तो मैंने नाश की भी चिन्ता नहीं की होती।"

इस प्रकार प्रेमचन्द एक विकासवादी समाजवादी हैं। वे कष्ट-सहिष्णुता और अहिंसा द्वारा नैतिक दबाव डालने वाली गांधीवादी नीति के अनुयायी हैं। वे क्रान्ति से भय खाते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में क्रान्ति यूरोप की भाँति न जाने किस प्रकार की तानाशाही को जन्म दे। इसी भय के कारण वे सर्वहारा क्रान्ति की अपेक्षा वैधानिक और शान्तिपूर्ण विकास के मार्ग पर चलना अधिक पसन्द करते हैं।

उनकी दृष्टि से साहित्य जीवन की गम्भीर समस्याओं के सम्बन्ध में जनमत तैयार करने का शक्तिशाली साधन था। उन्होंने अपना यह दृष्टिकोण साहित्य के कार्य पर बनाया था, जो जीवन की व्याख्या करता है और उसे परिवर्तित करता है। कविता, नाटक, कथा या निबन्ध किसी

भी रूप में क्यों न हो, उसे जीवन के महान् सत्य का उद्घाटन करना चाहिए; उसकी भाषा अत्यन्त गठी हुई, प्रौढ़ और सुन्दर होनी चाहिए; तथा उसमें मस्तिष्क और हृदय दोनों को प्रभावित करने की शक्ति होनी चाहिए। प्रेमचन्द जासूसी उपन्यासों, अतिप्राकृतिक कहानियों और सस्ती प्रेमकथाओं का, जो कि उनके पहले प्रचलित थीं, विरोध करते हैं। इस युग के लेखक को जीवन से कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं था। वे रहस्य और जादू, प्रेम और रोमांस की दुनिया बनाते थे। इन कहानियों का ध्येय पाठकों का मनोरञ्जन करना और उनके कौतूहल और अद्भुत की भावना को शान्त करना था। यह एक शून्य और निर्जीव संसार था। प्रेमचन्द ऐसे साहित्य-सृजन के पक्ष में थे, जिसका सबसे बड़ा उद्देश्य मनुष्य के भीतर उन उच्च प्रवृत्तियों और आध्यात्मिक गुणों का विकास करना है जो उसे एक अच्छे संसार के निर्माण करने में आने वाली बाधाओं को जीतने की शक्ति दे सकें। उनका कहना था कि यह सामाजिक कार्य अतीत काल में धर्म के द्वारा किया गया है। अतीतकालीन संस्कृति उन धर्म की आज्ञाओं पर आधारित थी, जिनमें पाप के भय और पुण्य के पुरस्कार का उल्लेख है। साहित्य ने धर्म का बीड़ा उठा लिया है, लेकिन उसी उद्देश्य को प्राप्त करने की इसकी विधि मनुष्य के भीतर गहन और तीव्र सौन्दर्य-प्रेम उत्पन्न करना है। साहित्यिक कृति की श्रेष्ठता और महानता मनुष्य के भीतर उसकी इसी सौन्दर्य-प्रेम को जगाने की क्षमता पर निर्भर है। वे जीवन के सन्ताप, कुरूपता और दरिद्रता के साथ समझौता करने में कठिनाई अनुभव करते थे। जो-कुछ भी अभाव उन्हें मानवता में दिखाई देता था वह उनके लिए असह्य हो जाता था। कलाकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उन लोगों की सहायता करे और उनका पक्ष ले, जो कि सामाजिक तथा आर्थिक अन्याय के शिकार हैं। उसे न्याय और प्रेम की भावना को जागृत करके समाज की अदालत में उनके मामले की वकालत करनी है। जिस समय वह उनके मामले की वकालत कर रहा हो उस समय उसे यह

अधिकार नहीं कि वह साधारण वकील की भाँति सत्य को बढ़ा-चढ़ाकर या उसे बिगाड़कर सामने लाए। वह यथार्थवादी ढंग से कहानी लिखते हैं और मनुष्य का सजीव चित्र अंकित करते हैं। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे सावधानी और निकट से जीवन को देखते हैं, मानव-मन की आन्तरिक हलचल का अध्ययन करते हैं और इस बात का ध्यान रखते हैं कि उनके पात्र चेतना और जीवन से परिचालित होते रहें।

जहाँ तक प्रगतिवाद का सम्बन्ध है, वे स्पष्ट रूप से इस बात की घोषणा करते हैं कि अपने स्वभाव और विषय की दृष्टि से प्रत्येक श्रेष्ठ साहित्य प्रगतिशील होता है। वे केवल उन फूलों को प्यार करते हैं, जो फल लाते हैं और उन बादलों को प्यार करते हैं, जो पानी बरसाते हैं। वे सौन्दर्य के लिए सौन्दर्य को प्रेम नहीं करते। सौन्दर्य वह है, जो जीवन को ऊँचा उठा दे। अतीतकाल में इन भावनाओं ने धार्मिक विचारों के आदर्शवादियों और नेताओं को प्रेरणा दी है। वे धरती पर स्वर्ग बनाने के अपने स्वप्न को पूरा करने में असफल रहे हैं। सामाजिक समता का आदर्श, जो कि जीवन का महान् आदर्श है, धर्म के द्वारा प्राप्त नहीं हुआ है। कलाकार केवल धनिकों की विचारधारा को ही व्यक्त करता रहा है। उसकी आँखें सदा उनके विलासपूर्ण प्रासादों पर रही हैं, गरीबों की टूटी-फूटी झोंपड़ियों पर नहीं। यह सत्य ही है कि उसने सदैव इन लोगों को मानवता और संस्कृति के क्षितिज के परे की वस्तु समझा है। यदि उसने साहित्य में इनका वर्णन किया भी है तो केवल उनके जीवन का उपहास करने के लिए। प्रगतिशील लेखक मनुष्य को समाज से अलग करके नहीं देखता, वह मनुष्य और समाज के बीच और भी घनिष्ठ सम्बन्ध की कल्पना करता है। मनुष्य मनुष्य का शोषण करने के लिए पैदा नहीं हुआ है, बल्कि उसे ऐसा बना दिया गया है। दोनों में कोई प्राकृतिक विरोध नहीं है। इसके विपरीत उसका जीवन समाज के विकास पर आधारित है। साहित्य का कार्य एक विशेष युग में उत्पन्न विरोध को दूर करके उन्हें परस्पर निकट ला देना है। इसी-

लिए प्रगतिशील साहित्य कर्मशीलता के पथ पर ले जाता है।

ग्राम्य-जीवन का चित्रण करने में प्रेमचन्द अग्रदूत हैं और उन्होंने इस जीवन का चित्रण करते समय—उसके विकास और विस्तार के एक विशेष समय में—अपने प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय दिया है। ज़मीन जोतने वाला या कुदाली चलाने वाला व्यक्ति शोषण का सबसे बड़ा शिकार है। एक लेखक दो कामों में से एक ही काम कर सकता है। या तो वह जमींदारों और पूँजीपतियों के विलासी जीवन को अपना आदर्श बना ले या किसानों और मज़दूरों के दुखी जीवन के चित्र अंकित करे। प्रेमचन्द ने देहाती जीवन की समस्याओं पर अद्भुत सूक्ष्मदर्शिता और सहानुभूति से विचार किया है। उन्होंने विस्तारपूर्वक उनकी दरिद्रता और भूख का भी वर्णन किया है, जो ज़मीन जोतते हैं, बीज बोते हैं परन्तु जिनका फसल पर कोई अधिकार नहीं होता। फिर उन्हें देहात के उस खुले जीवन में अत्यन्त सन्तोष मिलता है, जो अभी औद्योगीकरण के कारण विकृत नहीं हुआ है। वे गाँव के शान्त वातावरण को अत्यधिक प्यार करते हैं। अमरकान्त सुदूर देहात में एक अछूतों की बस्ती देखता है और उसका आदर्श स्थान के रूप में विस्तार से वर्णन करता है, जहाँ कि वह अपना जीवन आराम से बिता सकता है। नगर के त्रयी जीवन का शिकार एक नागरिक इस आदर्श स्थान में शान्ति और सान्त्वना प्राप्त कर सकता है। गाँवों को आदर्श बनाने की बात उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में बार-बार कही है। वे कहते हैं कि आज का किसान दुखी है, परन्तु अतीत में ऐसा नहीं था। वे दो ऐसे किसानों के चित्र देते हैं, जिनमें भारी अन्तर है। उनमें से एक किसान तो ऐसा है, जो सामन्तवादी व्यवस्था में रह रहा है और उसमें उसके तथा उसके मालिक के सम्बन्ध अधिक घनिष्ठ, प्रत्यक्ष और मानवीय हैं। दूसरा किसान आज का है। 'प्रेमाश्रम' में दलपतसिंह खेती से समृद्धि की हानि होने पर शोक प्रकट करता है। पैदावार प्रति एकड़ बहुत कम हो गई है, किसान की खरीदने की ताकत भी घट गई है और ज़मीन पर

दबाव बढ़ गया है।

प्रेमचन्द ने देहात की दरिद्रता का सच्चा और करुण चित्र अङ्कित किया है। किसान के घर में न धातु के चौके के बरतन हैं, न बिस्तर है और न खाट। उसकी झोंपड़ी में जीवन की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के भी साधन नहीं हैं। झोंपड़ी में दो ही छोटी कोठरियाँ हैं—एक आदमियों के लिए और दूसरी जानवरों के लिए। इन कोठरियों में न हवा पहुँच पाती है, न रोशनी। अपने गाँव में इस स्थिति को देखकर मायाशंकर को बड़ा धक्का लगता है। वह देखता है कि वहाँ किसान चिथड़ों में लिपटे हैं और वह उनके लिए भुना हुआ चावल ही जुटा पाता है। उनके पशु दुर्बल हैं, खाने की तंगी है और दूध कम है। उदाहरण के लिए होरी के पास ठण्ड और जाड़े की तीखी हवा से बचने के लिए कपड़े तक नहीं हैं। उसके पास तम्बाकू की पत्तियाँ भी नहीं हैं, जिससे कि वह लम्बी जाड़े की रात को काट सके। तम्बाकू पीना ही एक ऐसा उपाय है, जिससे वह सरदी के पीड़ा पहुँचाने वाले प्रभाव को भुला सकता है। वह तम्बाकू के अभाव में अपने शरीर को सिकोड़कर और उसे फटे कम्बल में लपेटकर जाड़े के प्रभाव को भुलाने की चेष्टा करता है। उसकी अपनी साँस भी उसके शरीर को गर्म रखने में सहायता देती है। किसान की यही दरिद्रता क्रोध उत्पन्न करती है। संक्रामक रोगों से परिवार-के-परिवार नष्ट हो जाते हैं, बाढ़ें गाँव-के-गाँव बहा ले जाती हैं। बेचारे असहाय ग्रामीण रोग और मृत्यु को दीर्घकालीन उदासीनता और परम्परागत शान्ति के साथ देखते रहते हैं। वे इन आपत्तियों और दूसरी बाधाओं को इस प्रकार सहते हैं मानो ये अवश्यम्भावी हों। जीवन के संघर्ष ने उनमें से बहुतों को पतित और पशु बना दिया है। वे घृणा और ईर्ष्या, लोभ और स्वार्थ से भरे हैं। 'प्रेमाश्रम' में ऐसे उदाहरणों की भरमार है जैसे एक किसान अपने भाई के साथ इसलिए विश्वासघात करता है क्योंकि ज़मींदार का कारिन्दा ऐसा चाहता है। 'रंगभूमि' में ऐसे किसानों की भारी तादाद है, जो अपने नाते-रिश्तेदारों की रिपोर्ट पुलिस

में लिखाते हैं। होरी का भाई उसकी गाय को इसलिए नहीं देख सकता कि वह उसकी समृद्धि का प्रतीक है। इस प्रकार दरिद्रता ने इन प्राणियों को, जो कि कभी मनुष्य थे, पतित कर दिया है। सामाजिक रीति-रिवाज उन्हें भारी ऋण में फँसा देते हैं। विवाह, जन्म और मृत्यु के कुछ ऐसे अवसर हैं, जब उन्हें अपनी शक्ति से अधिक काम करना चाहिए। वे साहूकार से रुपया उधार लेने को बाध्य होते हैं। यह ऐसा ऋण होता है, जिसको चुकाने की आशा वे अपने जीवन में नहीं कर सकते। वे ऋण चुकाने के लिए अपने ढोरों, अपने बरतनों और अपने घर तक को बेचने के लिए बाध्य होते हैं। प्रेमचन्द उनकी देशी शराब पीने की आदत की ओर भी संकेत करते हैं। भोला शराब की दुकान में अपना सब-कुछ दाँव पर लगा देता है। एक समय आता है, जब किसान स्वयं इस विलास में डूबे बिना नहीं रह सकता। गिरधर एक ऐसा ही किसान है, जो दरिद्रता की इस स्थिति तक पहुँच गया है कि वह अपनी साल-भर की कमाई में से ताड़ी या देशी शराब के लिए केवल एक आना ही बचा पाता है।

ग्राम्य-जीवन का चित्रण करते हुए प्रेमचन्द ने लोगों को दो वर्गों में बाँटा है—शोषक और शोषित। वे उन सबकी गणना करते हैं, जो किसानों और भूमिहीन मज़दूरों का शोषण करते हैं। ज़मींदार सबसे पहले आता है। पुराने ढंग का ज़मींदार-वर्ग अदृश्य हो रहा है और उसके स्थान पर एक नये ढंग का ज़मींदार-वर्ग आ रहा है, जो गरीब ज़नता के ऊपर अत्याचार करने में बहुत अधिक निर्दय है। ज्ञानशंकर ज़मींदारों के इस नये वर्ग का प्रतिनिधि है। वह कभी-कभी अपने किसानों में घृणा उत्पन्न कर देता है, जो उसे कलंकित और अपमानित करते हैं। वह पाश्चात्य शिक्षा की उपज है। उसकी आवश्यकताएँ बढ़ गई हैं, व्यसन कई गुने हो गए हैं। उसे किसानों से अधिक रुपया वसूल करने की आवश्यकता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के ये सभी ज़मींदार, जो ग़रीब जनता की कमाई पर जीते हैं, इस उपन्यास के तीसरे अध्याय में उनका

वर्णन और आलोचना विद्यमान है। लेखक की तीक्ष्ण दृष्टि से पुलिस और छोटे कर्मचारियों द्वारा किये गए अत्याचार भी नहीं बच पाए हैं। कृषि-सम्बन्धी प्रत्येक उपन्यास में उन्होंने उनका विस्तृत वर्णन किया है। गाँव में समाज के स्तम्भों का इतनी बुरी तरह भण्डाफोड़ किया गया है कि उनके व्यक्तिगत चरित्र और सामाजिक आचरण के बीच की असंगतियाँ शीशे की तरह साफ़ हो गई हैं। उन सर्वशक्तिमान चपरासियों की भी निर्दयतापूर्वक निन्दा की गई है, जो अपढ़ और असहाय ग्रामीणों पर अनुचित अधिकार जताते रहते हैं। रिश्वत और भ्रष्टाचार की प्रथा का वर्णन इन उपन्यासों में विस्तार के साथ किया गया है। उनमें से रामसेवक नामक एक पात्र तो डॉक्टरों, स्कूलों के इन्सपेक्टरों, सिंचाई, लगान, मालगुज़ारी और ग्राम-सुधार विभाग के अफ़सरों तक को नहीं छोड़ता। वे सब उसी थैली के चट्टे-बट्टे हैं। इस निर्मम शोषण के परिणाम बड़े शोकजनक होते हैं। भारतीय किसान मज़दूर बनने को बाध्य किया जाता है। होरी एक कठिन परिश्रम करने वाले और ईमानदार किसान का ऐसा उदाहरण है, जिसे अपनी ज़मीन को बेचकर मज़दूर होने के लिए विवश किया जाता है। बलराज और गोबर नई चेतना के प्रतिनिधि हैं और वे अपने वर्ग के निर्मम शोषण के विरुद्ध विद्रोह करते हैं। वे वर्ग के आधार पर किसानों का संगठन करके उनका नेतृत्व नहीं करते, वरन् उनका नेतृत्व मध्य वर्ग के प्रगतिशील अंग द्वारा होता है। अन्तिम उपन्यास में रामसेवक किसानों को संगठित करने के लिए एक सूत्र में बाँधने में सफल हो जाता है। वह कहता है कि उन्हें शोषण के विरुद्ध खड़ा होना चाहिए अन्यथा वे हर एक आदमी द्वारा कुचले जायँगे।

प्रेमचन्द सुधार के ऐसे सुझाव पेश करते हैं, जिनसे कि ग़रीब किसानों का भला हो सकता है। 'प्रेमाश्रम' में प्रेमशंकर, ज्वालासिंह, डॉक्टर प्रियानाथ और इरफ़ानअली, 'रंगभूमि' में रानी जाह्नवी और विनयसिंह, 'कर्मभूमि' में अमरकान्त, समरकान्त, प्रोफ़ेसर शान्तिकुमार और सलीम गरीबों की सहायता के लिए कष्ट सहते हैं। इन ग़रीबों की

आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए लेखक गाँवों के औद्योगीकरण के पक्ष में नहीं है। अपढ़ किसानों को पढ़ाने से ही दरिद्रता की समस्या नहीं सुलझ सकती। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का आधार सहयोग न होकर प्रतियोगिता है, इसलिए उनमें इससे ईर्ष्या, घृणा और अवाञ्छनीय प्रतिस्पर्द्धा पैदा हो जायगी। किसानों की दशा सुधारने के लिए जिन क्रान्तिकारी परिवर्तनों की आवश्यकता है वे विधान-सभाओं की मन्दगति और असमंजसपूर्ण स्थिति से सम्भव नहीं है। समाज-सुधारक क्रान्तिकारी नारे लगाकर अपने वर्ग का ही हित-साधन करते हैं। ज़मींदार अपने किसानों को साधारण-सी सुविधा दे सकते हैं। अपने उपन्यासों में प्रेमचन्द मौलिक आर्थिक समस्याओं के हल के लिए इधर-उधर भटकते दिखाई देते हैं। सन् बीस और तीस के राष्ट्रीय आन्दोलनों के समय ये गांधीवादी विचारधारा से अत्यधिक प्रभावित थे। एक ईमानदार कलाकार के नाते उन्होंने इसकी सामर्थ्य की जाँच की और पाया कि भयंकर रोग के लिए यह एक साधारण-सा इलाज है। भारतीय किसानों की स्थिति को सुधारने के लिए विभिन्न राष्ट्रीय आन्दोलनों में जो-जो प्रयत्न हुए हैं, उन सबका वर्णन प्रेमचन्द ने सचाई के साथ किया है। होरी जैसा पहले दुखी था वैसा ही अब भी है। इन वर्षों में उसकी स्थिति इतनी बिगड़ गई है कि वह अन्त में उन शक्तिशाली आर्थिक शक्तियों का शिकार हो जाता है जो अपने प्रयोग के समय और भी क्रूर हो उठती हैं।

वैधानिक तरीकों से सामाजिक और आर्थिक सुधार में प्रेमचन्द का विश्वास बहुत कम है। वे वैधानिक सभाओं के उन सदस्यों से अधिक आशा नहीं करते जो कि पीड़ित जनता की भलाई के लिए निरन्तर व्यापक और रचनात्मक कार्यक्रम ही बनाते रहते हैं। अपने निजी स्वार्थों की सिद्धि के लिए चुनाव लड़ने वाले समाज-सुधारकों और विधानवादियों के सम्बन्ध में 'सेवासदन' में उन्होंने अपने विचार प्रकट किये हैं। मध्य वर्ग के इन अपने से ही सन्तुष्ट रहने वाले नेताओं का उन्होंने

विस्तार से चरित्र-चित्रण किया है। समय-समय पर ये नेता किसानों और मज़दूरों की गरीबी से बेचैन हो उठते हैं लेकिन इन समस्याओं पर कुछ प्रश्न पूछकर वे फिर अपने को शान्त कर लेते हैं। डॉ० श्यामनारायण, राय कमलानन्द और गाँगुली बाबू विधान-सभाओं के कार्य की निरर्थकता का अनुभव करते हैं। वे जानते हैं कि कौंसिलें केवल वाद-विवाद की समितियाँ हैं जो किसी राष्ट्र को स्वतन्त्रता नहीं दिला सकतीं। इन संस्थाओं के खोखलेपन, निरर्थकता और शून्यता का प्रेमचन्द ने खूब भण्डाफोड़ किया है, क्योंकि ये संसार को धोखा देने के लिए बनाई गई हैं। प्रति दस वर्ष बाद छोड़े जाने वाले भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के राजनीतिक जनान्दोलन में उनका गहरा विश्वास था। उन्होंने गृह-उद्योग-धन्धों, मद्यनिषेध और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के कार्यक्रम का समर्थन किया। उन्होंने सदैव उस किसान पर अपनी दृष्टि रखी जो कि इस देश की रीढ़ है। उनके अनुसार स्वराज्य उन किसानों की माँग थी, जो सहयोग के आधार पर भूमि का वितरण देखकर फिर नवजीवन प्राप्त कर सकते हैं। इसके लिए ज़मींदार को बनाए रखने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन साथ ही यह भी आवश्यक नहीं है कि स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए राजनीतिक आन्दोलन से ज़मींदारों को निकाल दिया जाय। वे भूमि और उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के क्रान्तिकारी मार्ग की अपेक्षा सुधारों के विकासवादी मार्ग में विश्वास रखते थे। उसके साथ ही वे यह भी नहीं चाहते थे कि एक शोषक के स्थान पर दूसरा शोषक आ जाय। जो लोग राष्ट्रीयता की आड़ में पूँजीवादी हितों की स्थापना करना चाहते हैं, उनके वे घोर विरोधी थे। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि वे एक समाजवादी थे और उनका समाजवाद मार्क्सवाद की नक़ल पर नहीं बना था वरन् किसानों के जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव से ही उसका निर्माण हुआ था। यह अधिक मूल्यवान है, क्योंकि उन्होंने इसे युग के वास्तविकतापूर्ण वातावरण से ग्रहण किया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से समाजवाद के प्रति अपना विश्वास प्रकट किया है। वे कहते हैं—"साम्य-

वाद चाहे फैले, या न फैले परन्तु एक आदर्श समाज का आधार बदल गया है। दूसरी दुनिया के बारे में भारतवर्ष-जैसा रूढ़िवादी देश विचार-मग्न रह सकता है लेकिन सारा संसार समाजवाद की ओर बढ़ रहा है। समाजवादी का नास्तिकतावाद और बिना जन्म और परम्परा का विचार किये सबको समान अवसर देना सच्चे धर्म के अधिक निकट है।"

इस देश की आर्थिक और राजनीतिक समस्याओं पर विचार करते हुए प्रेमचन्द ने इस बात का परिचय दिया है कि इनके सम्बन्ध में उनका ज्ञान कितना विशाल है। उन्होंने राजनीतिक सभाओं, जुलूसों, लगानबन्दी-आन्दोलनों और पूर्ण स्वराज्य के लिए छेड़े गए जनान्दोलनों के वर्णन में अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन किया है। ऐसे आन्दोलनों में उनको अहिंसा के प्रश्न का सामना करना पड़ा है। उन्होंने देखा कि भीड़ सदा अहिंसक नहीं रह सकती और उसे इस हद तक उत्तेजित करना सम्भव है कि वह किसी भी प्रकार की अनुनय-विनय से वश में न रहे। वे अहिंसा में सिद्धान्त के रूप से विश्वास नहीं रखते थे वरन् उसे स्वराज्य के लिए उचित अस्त्र और नीति समझकर अपनाने के पक्ष में थे। उन्होंने संघर्ष की प्रत्येक स्थिति और स्वरूप को देखा था। उन्होंने इसे विभिन्न वर्गों और सामाजिक दलों के साथ सम्बन्धित करके भी देखा। पूँजीवादी इसमें शामिल हुए और इसका नाश कर दिया, सरकारी अफ़सर साधारणतः इसके विरोध में थे, मध्य वर्ग ने बहुत-कुछ सोच-विचार के बाद इसमें भाग लिया, लेकिन किसानों और मज़दूरों ने इसे शक्ति और सामर्थ्य दी। इतना होते हुए भी उन्हें इससे कोई लाभ नहीं हुआ। इसने मध्य और उच्च वर्गों को ही लाभ पहुँचाया है। जीवन की आर्थिक समस्या पर अधिकाधिक बल देने के कारण वे समाज में वर्गचेतना पर अपना ध्यान केन्द्रित कर लेते हैं। यही कटु अनुभव था, जिसके कारण कि वे नई परिस्थिति को स्वीकार करने के लिए बाध्य हुए। किसानों के प्रति तीव्र प्रेम ने उन्हें समाजवाद में आस्था रखने के लिए बाध्य किया और इस नये दृष्टिकोण ने उसके

पिछले ग्रन्थों को नवीन सामाजिक उद्देश्य से पूर्ण बनाया।

प्रेमचन्द परम्परा के अन्धानुयायी नहीं थे तो भी वे प्राचीन सामाजिक ढाँचे की कुछ मौलिक मान्यताओं और आदर्शों को अपनाए रखना चाहते थे। उन आदर्शों में एक है सम्मिलित परिवार प्रथा, जिसने कि समाज के हित के लिए बहुत-कुछ किया है। चूँकि सामाजिक सुधारों पर उन्होंने नैतिक दृष्टि से विचार किया है, इसलिए उन्होंने परिवार में सामाजिक सम्बन्ध पर ज़ोर दिया है। समाज केवल एक बड़ा परिवार है। सम्मिलित परिवार ने अपने सदस्यों के बीच केवल प्रेम और सहयोगी प्रयत्नों को ही प्रोत्साहन नहीं दिया वरन् इसने उन लोगों को आर्थिक सुविधा भी दी, जो कि इसकी आवश्यकता अनुभव करते थे। यह कार्य गाँवों में विशेष रूप से हुआ क्योंकि वहाँ एक व्यक्ति के लिए अकेले अपने खेत को कमाना कठिन था। परिवार में मतभेदों और झगड़ों के होते हुए भी सहयोगी प्रयत्न आगे बढ़ सकते थे। देहात में ज़मीन और जायदाद के बटवारे ने परिवार के सभी सदस्यों को संकट में डाल दिया था। प्रेमचन्द ने इस समस्या से सम्बन्ध रखने वाली अनेक कहानियों में इस बात को दिखाया है। वे पारस्परिक सहायता और सहयोग पर आधारित सम्मिलित परिवार की संस्था को आदर्श का रूप देते थे। इसके छिन्न-भिन्न होने का कारण वे स्त्रियों के झगड़ों, विमाताओं की उपस्थिति, बड़ी उम्र में होने वाली आदमियों की शादियों और समाज में विधवाओं की समस्याओं को बताते थे। उन्होंने उस नई आर्थिक व्यवस्था पर कभी विचार नहीं किया जो कि परिवार-प्रथा और ग्राम्य-जीवन को छिन्न-भिन्न करने की उत्तरदायी है। स्वाधीन ग्राम्य-समाज और जाति-व्यवस्था ये दो प्राचीन सामाजिक ढाँचे की विशेष बातें थीं। तीसरी सम्मिलित परिवार-व्यवस्था थी, जिसे लेखक ने अपने ग्रन्थों में आदर्श का रूप दिया है। सम्मिलित सम्पत्ति परिवार के सभी सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन समझी जाती थी, भले ही वे काम करने वाले हों या काम न करने वाले हों। इसका अर्थ सबके

लिए कम-से-कम सम्पत्ति की व्यवस्था थी। यह एक प्रकार का बीमा था, जिसमें नाबालिग और शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से अशक्त लोगों का भी भाग था। व्यक्तिगत लाभ या महत्त्वाकांक्षा पर ज़ोर न देकर समूह पर ज़ोर दिया जाता था। सम्मिलित परिवार में रहने का अभिप्राय सामाजीकरण की क्षमता का सम्पादित करना था। समाजवाद में विश्वास रखने वाले प्रेमचन्द इन संस्थाओं को इसलिए बनाए रखना चाहते थे कि उनका उद्देश्य सामाजिक संरक्षण, स्थायित्व और समूह अर्थात् समाज का स्थिर बना रहना था। प्रगति उद्देश्य नहीं था इसलिए प्रगति में बाधा पड़ी। पश्चिम की अत्यधिक व्यक्तिवादी सभ्यता जिस प्रगति को प्रोत्साहन देती है, वह लेखक को रुचिकर नहीं थी। सम्मिलित परिवार और ग्राम्य-व्यवस्था के छिन्न-भिन्न हो जाने से नई समस्याएँ उठ खड़ी हुईं और उन्होंने नये दृष्टिकोण का विकास किया। लेखक ने अपने उपन्यासों और कहानियों में इस पर पश्चाताप प्रकट किया है।

जनता के जीवन में होने वाले इन भारी परिवर्तनों को प्रेमचन्द ने देखा था। उन्होंने इनको अपने उपन्यासों और कहानियों में इसलिए स्थान दिया कि जिससे उत्साही मध्य वर्ग का ध्यान उन नई समस्याओं पर केन्द्रित हो जाय जो कि पूँजीवादी सभ्यता के कारण उत्पन्न हो गई थीं। उन्होंने अपनी कला का उपयोग ग्रामीण जीवन और उसकी समस्याओं के चित्रण के लिए किया। महात्मा गांधी ने लेखकों और कार्यकर्ताओं का ध्यान देहात की ओर खींचा और उन्होंने इस युग की कला और जीवन पर अत्यधिक प्रभाव डाला। उन्होंने लेखकों को एक विचारधारा दी, जिसे उन्होंने अपने ग्रन्थों में व्यक्त किया। गांधी ताज़ी हवा के उस तीव्र झोंके के समान थे, जो लोगों को थकान दूर करने और गहरी साँस लेने का अवसर देता है; वे प्रकाश की उस किरण के समान थे जो अन्धकार को बेध देती है और उनकी आँखों की पलकों को खोल देती है; वे उस बवण्डर के समान थे, जो बहुत सी चीज़ों को अस्त-व्यस्त कर देता है लेकिन जो सबसे अधिक हलचल मनुष्य के

मस्तिष्क में पैदा करता है। वे लाखों भारतवासियों के बीच से ऊपर आये थे। वे जनता की भाषा बोलते थे तथा निरन्तर उनकी और उनकी गरीबी की ओर लोगों का ध्यान खींचते रहते थे। उन्होंने विभिन्न मात्राओं में लाखों ही को प्रभावित किया। प्रेमचन्द ने अपने जीवन का सारा क्रम बदल दिया। वे प्रगतिशील लेखक बन गए और उन्होंने अपना ध्यान प्रमुख रूप से भारतीय किसान पर केन्द्रित कर दिया। उन्होंने कार्यक्षेत्र की दृष्टि से ग्राम को महत्त्व दिया। उन्होंने मध्य वर्ग पर भी लिखा, जो कि प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी दोनों था। प्रगतिशील तो इसलिए कि वे अतीत की कटु आलोचना करते थे और प्रतिक्रियावादी इसलिए कि वे असुन्दर वर्तमान के विरुद्ध प्रतिक्रिया-स्वरूप अतीत को आदर्श मानते थे और उसके पुनरुद्धार की आशा रखते थे। प्रेमचन्द ने प्रतिभा का पूरा-पूरा प्रदर्शन किया। उन्होंने नवीन वर्गचेतना का विकास करते हुए दास और भयभीत किसानों के सम्बन्ध में लिखा; उन्होंने राष्ट्रीय संग्राम में भाग लेकर अपने युग-युग के विषाद को नष्ट करने वाले मध्य वर्ग के लोगों का चित्रण किया; उन्होंने मरती हुई सामन्ती व्यवस्था और तेज़ी से बढ़ती हुई पूँजीवादी सभ्यता का वर्णन किया। वे निश्चय ही एक ऐसे मानवतावादी थे, जिनका कि मनुष्य की गरिमा में अगाध विश्वास होता है। तीस वर्ष तक साहित्य-सृजन करने का अर्थ यह था कि वे इस बात की उत्कट अभिलाषा रखते थे कि पाठकों में जीवन के प्रति सक्रिय दृष्टिकोण रखने की भावना पैदा हो जाय। उन्होंने उन सभी बुराइयों के विरुद्ध युद्ध किया, जो मनुष्य को उस नवीन समाज-व्यवस्था का निर्माण करने से रोकती हैं, जिसमें कि सबको समान अवसर मिलता है। इसी सामाजिक उद्देश्य से उनका मस्तिष्क परिव्याप्त था और इसीसे उनकी कला अनुप्राणित थी।

परिशिष्ट १

पारिभाषिक शब्द

पुस्तक में निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग एक निश्चित अर्थ और धारणा को व्यक्त करने के लिए किया गया है। इन शब्दों की परिभाषा देना इसलिए आवश्यक है कि इससे उनके विशिष्ट अर्थों और सम्बन्धों का स्पष्टीकरण हो जायगा।

(१) *अनुदार या रूढ़िवादी* (Conservative)—वह व्यक्ति, जो समस्त महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों का तिरस्कार करके समाज जैसा है और जैसा रहा है वैसे ही रूप में उसको बनाए रखना चाहता है।

(२) *प्रगतिवादी* (Progressive)—वह व्यक्ति, जो स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया में समाज की वर्तमान स्थिति में भावी परिवर्तन का समर्थक हो और उसके प्रति सहानुभूति रखता हो।

(३) *प्रतिक्रियावादी* (Reactionary)—वह व्यक्ति, जिसने यह अनुभव कर लिया है कि समाज वर्तमान स्थिति से नवीन स्थिति में बदल रहा है या उसके बदलने की सम्भावना है और जो इस परिवर्तन के विरुद्ध कार्य करता है। सामाजिक प्रगति में बाधा डालने के लिए प्रतिक्रियावादी केवल इसका विरोध ही नहीं करता वरन् क्रियात्मक रूप से पहले जैसे समाज के निर्माण में भी लगता है। रूढ़िवादी या अनुदार वर्तमान स्थिति को बनाए रखना चाहता है, जब कि प्रतिक्रियावादी यह जानता है कि वर्तमान व्यवस्था नष्ट हो रही है या नष्ट हो जायगी और जानकर प्रयत्न करता है कि समाज नवीन व्यवस्था के लिए आगे बढ़ने की अपेक्षा आदि अवस्था की ओर लौटे। रूढ़िवादी अतीत के संरक्षण

की चेष्टा करता है, जब कि प्रतिक्रियावादी उसके पुनर्निर्माण के ध्येय को लेकर चलता है।

(४) *उदारदली या नरमदली* (Liberal)—वह व्यक्ति, जो उदारतावाद (Liberalism) के विचारों से चिपका रहता है या उनका समर्थन करता है। उदारतावादी आन्दोलन सफल अभिजात्यवर्ग की एक विशेषता है। यह विशेष रूप से इंग्लैण्ड में उन्नीसवीं शताब्दी में मध्य वर्ग के आदर्शों और मान्यताओं से सम्बन्ध रखने वाली वस्तु थी। जब उदारतावाद का उत्थान हो रहा था, उदारतावादी प्रगतिवादी थे, जब उसका पतन हो रहा है, वे रूढ़िवादी हैं और जब वह अदृश्य हो रहा है, वे उसके पुनर्निर्माण का प्रयत्न करते हुए प्रतिक्रियावादी हैं।

(५) *सामन्तशाही* (Feudal)—इसका सम्बन्ध उस समाज या समाज की उस शासक संस्कृति या वर्ग से है, जो प्रमुख रूप से कृषि-सम्बन्धी रही है और जिसमें सम्पत्ति का प्रधान रूप लगान रहा है, और सबसे बड़ी शक्ति उस वर्ग के हाथ में रही है, जो स्वयं ज़मीन नहीं कमाता वरन् दूसरों की कमाई पर अपना घर भरता है।

(६) *अभिजात्यवर्ग* (Bourgeois)—इसका सम्बन्ध उस समाज या समाज की उस शासक संस्कृति या वर्ग से है, जो प्रमुख रूप से पूँजीवादी होती है, जिसमें सम्पत्ति का प्रधान रूप व्यापार या उद्योग-धन्धों से प्राप्त होता है और सत्ता विशेषकर उस वर्ग के हाथ में रहती है, जो व्यापार और उद्योग-धन्धों को स्वयं नहीं करता वरन् दूसरों के श्रम पर लाभ कमाता है।

(७) *समाजवादी* (Socialist)—इसका सम्बन्ध उस समाज से है, जिसमें उद्योग-धन्धे, कृषि आदि सब एक निश्चित और सहयोग के आधार पर उन सबके हित के लिए किये जाते हैं, जो उनका संचालन करते हैं, जिसमें सम्पत्ति का रूप सामग्री की खपत में होता है और जिसमें सत्ता प्रजातान्त्रिक ढंग से समाज के सभी सदस्यों के हाथ में रहती है।

सामन्तवाद शब्द भारतीय परिस्थितियों में उचित नहीं, क्योंकि यहाँ सामन्तवादी यूरोप की भाँति ज़मीन पट्टों पर नहीं दी जाती लेकिन इसके लिए और कोई शब्द नहीं है।

(८) *उच्च वर्ग* (Upper class)—सामन्ती समाज में शासक-वर्ग, अभिजात्य समाज में, विशेषकर आज के भारत में, भूमिपति वर्ग। इसमें वे लोग नहीं आते जो ज़मीन के मालिक भी हैं और उसे स्वयं कमाते भी हैं।

(९) *मध्य वर्ग* (Middle class)—सामन्ती वर्ग में व्यापारी और क्लर्कों का वर्ग है। यही वह वर्ग है जो पूँजीवाद के उत्थान के साथ धनी और सत्ताधारी हो गया। इसलिए अभिजात्य समाज में मध्य वर्ग शासक-वर्ग होता है। इसमें पूँजीवादी व्यवस्था से सम्बन्धित वे सब लोग आ जाते हैं, जो जायदाद के मालिक होते हैं—विशेष रूप से वे लोग, जिनकी आमदनी अपनी मिलकियत से होती है। मध्य वर्ग की धारणा अभी भी स्पष्ट नहीं है। यह मूल रूप से मध्य वर्ग इसलिए कहा गया क्योंकि यह सामन्ती समाज में उच्च और निम्न वर्ग के बीच में उठा। निम्न वर्ग और अभिजात्य मध्य वर्ग के बीच एक नया वर्ग और उठ खड़ा हुआ है। वह वर्ग है वकील, डॉक्टर और प्रोफेसरों तथा अच्छे पदों पर नियुक्त सरकारी अफसरों का। दोनों प्रकार के मध्य वर्गों के बीच के अन्तर को ध्यान में रखना महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत पुस्तक में मध्य वर्ग का प्रयोग इन्हीं वकीलों, डॉक्टरों, प्रोफेसरों और उन उद्योगपतियों के लिए हुआ है, जो भारी पूँजी लगाकर अपनी आमदनी करते हैं। उच्च, केन्द्रीय और निम्न मध्य-वर्ग को उनकी आय और पद के द्वारा ही समझा जा सकता है।

(१०) *नौकरशाही* (Bureaucracy)—छोटे और बड़े सरकारी नौकरों का वह वर्ग जो सरकारी मशीनों को चलाता है।

परिशिष्ट २
प्रेमचन्द के पत्र

पत्र १

धनपत राय बी० ए०
(उर्फ प्रेमचन्द)

१६८, सारस्वत सदन, दादर
बम्बई १४
२६ दिसम्बर १९३४

प्रिय इन्द्रनाथ जी,

आपका १६ तारीख का पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। नीचे आपके प्रश्नों का क्रमशः उत्तर देने की चेष्टा की गई है।

(१) मेरी सम्मति में मेरी समस्त रचनाओं में 'रंगभूमि' सर्वश्रेष्ठ है।

(२) मैंने अपने प्रत्येक उपन्यास में एक आदर्श पात्र रखा है। उसमें मानवीय भावनाएँ और गुण भी हैं लेकिन है वह आदर्श ही। 'प्रेमाश्रम' में ज्ञानशंकर है, 'रंगभूमि' में सूरदास है, उसी प्रकार 'कायाकल्प' में चक्रधर है, 'कर्मभूमि' में अमरकान्त है।

(३) मेरी कहानियों की संख्या लगभग २५० है। मेरे पास अप्रकाशित कहानी कोई नहीं है।

(४) हाँ, मैं टालस्टाय, विक्टर ह्यूगो और रोमा रोलां से प्रभावित हूँ। जहाँ तक कहानियों का सम्बन्ध है मैंने मूलतः डॉक्टर रवीन्द्रनाथ ठाकुर से प्रेरणा पाई है। शैली का विकास स्वयं मैंने किया है।

(५) मैंने कभी गम्भीरता से नाटक लिखने की चेष्टा नहीं की। मैंने एक या दो ऐसी कथाएँ चुनी थीं, जिनके सम्बन्ध में मेरा ऐसा विचार

था कि उनका उपयोग नाटकों में अच्छा हो सकता है। रंगमंच के अभाव में नाटक अपना महत्त्व खो बैठता है। भारतवर्ष में—विशेषकर हिन्दी और उर्दू में—रंगमंच नहीं है। यदि रंगमंच है भी तो वह पारसी रंगमंच का ही भग्नावशेष है, जिससे कि मैं सदैव घबराता रहा हूँ। फिर मैंने नाट्यकला और रंगमंच-कौशल का भी ज्ञान प्राप्त नहीं किया। इस प्रकार मेरे नाटक केवल पठनीय नाटक ही हैं। प्रश्न यह उठता है कि मैंने उपन्यास को, जिसमें पात्रों के चरित्र के विकास की अधिक गुञ्जायश है, छोड़कर नाटक क्यों लिखे। इसका उत्तर यही है कि मैंने अपने विचारों के व्यक्तीकरण का साधन बनाने के लिए उपन्यास को ही तरजीह दी है। आज भी मैं एक या दो नाटक लिखने की सोचता हूँ। जहाँ तक आर्थिक सफलता का प्रश्न है, हिन्दी या उर्दू में यह मँहगा सौदा है। आप बदनाम हो सकते हैं परन्तु किसी भी प्रकार आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र नहीं। हमारी जनता में पुस्तकें खरीदने की कमज़ोरी नहीं है। वह अनुभवशून्य, सुस्त और मानसिक जड़ता से ग्रसित है।

(६) सिनेमा में साहित्यिक व्यक्ति के लिए स्थान नहीं है। मैं इसमें इसलिए आया क्योंकि मैं समझता था कि इसमें मुझे आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने का अवसर मिलेगा। लेकिन यह मेरी भूल थी और मैं फिर साहित्य में लौट रहा हूँ। वास्तव में मैंने उस साहित्य-सृजन को, जिसे मैं अपने जीवन का ध्येय समझता हूँ, कभी बन्द नहीं किया। सिनेमा मेरे लिए वकालत के समान ही है। अन्तर केवल इतना है कि वह इससे कुछ अच्छी रहती।

(७) मैं कभी जेल नहीं गया। मैं क्रियात्मक व्यक्ति नहीं हूँ। मेरी रचनाओं ने कई बार सत्ता पर आक्रमण किया है और मेरी एक या दो रचनाएँ ज़ब्त भी हुई हैं।

(८) हमारा उद्देश्य जनमत तैयार करना है, इसलिए मैं सामाजिक विकास में विश्वास रखता हूँ। अच्छे तरीकों के असफल होने पर ही क्रान्ति होती है। मेरा आदर्श है प्रत्येक को समान अवसर का प्राप्त

होना। इस सोपान तक बिना विकास के कैसे पहुँचा जा सकता है, इसका निर्णय लोगों के आचरण पर निर्भर है। जब तक हम व्यक्तिगत रूप से उन्नत नहीं हैं तब तक कोई भी सामाजिक व्यवस्था आगे नहीं बढ़ सकती। क्रान्ति का परिणाम हमारे लिए क्या होगा, यह सन्देहास्पद है। हो सकता है कि वह सब प्रकार की व्यक्तिगत स्वाधीनता को छीनकर तानाशाही के घृणित रूप में हमारे सामने आ खड़ी हो। मैं शुद्धीकरण करने के पक्ष में तो हूँ, उसे नष्ट करने के पक्ष में नहीं। यदि मुझे यह विश्वास हो जाता और मैं जान लेता कि ध्वंस से हमें स्वर्ग मिलेगा तो मैंने ध्वंस की भी चिन्ता नहीं की होती।

(६) सर्वहारावर्ग में तलाक साधारण-सी बात है। केवल तथाकथित उच्च वर्ग में ही उसने गम्भीर रूप धारण कर लिया है। अपने श्रेष्ठतम रूप में विवाह भी एक प्रकार का समझौता और समर्पण ही है। यदि कोई दम्पति सुखी होना चाहते हैं तो उन्हें एक-दूसरे के लिए गुन्जायश रखनी चाहिए। वैसे ऐसे भी लोग हैं जो अच्छी-से-अच्छी परिस्थिति में भी सुखी नहीं रह सकते। स्वच्छन्द प्रेम और सभी प्रकार के सम्बन्धों की छूट होने पर भी अमरीका में तलाक कम हो, ऐसी बात नहीं है। चाहे स्त्री हो या पुरुष, उनमें से एक को झुकने के लिए तैयार रहना चाहिए। मैं यह नहीं मानता कि दोषी केवल पुरुष ही है। बहुत से मामले ऐसे हैं, जहाँ स्त्रियाँ संकट पैदा करती हैं और काल्पनिक दुखों की सृष्टि कर लेती हैं। जब इस बात का निश्चय ही नहीं है कि तलाक हमारी वैवाहिक बुराइयों को दूर करेगा, मैं उसे समाज पर लादना नहीं चाहता। हाँ, कुछ मामलों में तलाक आवश्यक हो जाता है। लेकिन मेरी समझ में झगड़े की जड़ एक-दूसरे की उपेक्षा को छोड़कर और कोई नहीं है। ग़रीब स्त्री को बिना कुछ गुजारा दिये तलाक दे दिया जाय, यह माँग केवल कुत्सित व्यक्तिवाद के परिणामस्वरूप की जाती है। समानता के आधार पर निर्मित समाज में इस माँग को कोई स्थान नहीं है।

(१०) आरम्भ में चिन्तन के परिणामस्वरूप नहीं वरन् परम्परागत विश्वास के कारण मैं एक महान् दैवी शक्ति में विश्वास रखता था। वह विश्वास अब टूट रहा है। यद्यपि विश्व के पीछे कोई हाथ है, लेकिन मैं नहीं समझता कि उसे मानवीय कार्यों से कुछ लेना-देना है, उसी प्रकार जैसे कि उसे चींटियों, मक्खियों या मच्छरों के कार्यों में कुछ लेना-देना नहीं है। हमने जो अपने को महत्त्व दे रखा है, वह ठीक नहीं है।

मैं समझता हूँ कि अभी इतना ही पर्याप्त होगा। मैं अंग्रेजी का पण्डित नहीं हूँ इसलिए हो सकता है कि जो कुछ मैं कहना चाहता था, वह न कह सका होऊँ, लेकिन मैं विवश हूँ।

आपका ही
प्रेमचन्द

पत्र २

बम्बई ३, एस्प्लेनेड रोड।
बनारस, 'हंस' कार्यालय।
७–६–३४

प्रिय इन्द्रनाथ जी,

अब मैं आपके प्रश्नों का उत्तर देता हूँ।

(१) बचपन में मेरे ऊपर मेरे घर का जो प्रभाव पड़ा है वह बिलकुल मामूली है। न तो उसे बहुत अच्छा ही कहा जा सकता है, और न बुरा ही। जब मैं आठ वर्ष का था तभी मेरी माँ चली गईं। उससे पहले की स्मृति बड़ी धुँधली है। केवल इतना ही ध्यान है कि मेरी दुर्बल माँ कभी तो अत्यन्त ममतामयी जान पड़ती थीं और कभी समय पड़ने पर कठोर हो जाती थीं जैसा कि सभी अच्छी माताएँ होती हैं।

(२) मैंने पहले उर्दू साप्ताहिकों में और फिर मासिकों में लिखना शुरू किया। लिखना मेरा व्यसन था। मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि

मैं अन्त में लेखक हो जाऊँगा। मैं सरकारी नौकर था और अवकाश के समय ही लिखता था। उपन्यासों के लिए मेरी भूख कभी शान्त नहीं होती थी और मैं बिना औचित्यानौचित्य के विचार के जो कुछ मिलता था, निगल लेता था। मेरा पहला लेख १९०१ में छपा और पहली पुस्तक १९०३ में। रचनाओं से मेरे अहं की तुष्टि के अतिरिक्त और कुछ लाभ नहीं हुआ। पहले मैंने सामयिक घटनाओं के सम्बन्ध में लिखा और उसके बाद वर्तमान तथा अतीत के वीरों के रेखाचित्र दिये। १९०७ में मैंने उर्दू में कहानियाँ लिखना आरम्भ किया और निरन्तर सफलता मिलते रहने से मैंने लिखना जारी रखा। १९१४ में मेरी कहानियाँ दूसरों द्वारा अनूदित हुईं और हिन्दी-मासिकों में प्रकाशित हुईं। तब मैंने भी हिन्दी को अपनाया और 'सरस्वती' में लिखना शुरू किया। उसके पश्चात् मेरा 'सेवासदन' निकला और मैंने नौकरी छोड़कर स्वतन्त्र रूप से साहित्यिक जीवन बिताना आरम्भ कर दिया।

(३) नहीं, मेरे जीवन में कोई प्रेम-प्रसंग नहीं घटा। जीवन इतना व्यस्त था और जीविकोपार्जन इतना कठिन कार्य था कि उसमें रोमांस के लिए स्थान ही नहीं था। कुछ बहुत ही साधारण ढंग की बातें अवश्य हैं, पर मैं उन्हें प्रेम-प्रसंग नहीं कह सकता।

(४) मेरा नारी का आदर्श है एक ही स्थान पर त्याग, सेवा और पवित्रता का केन्द्रित होना। त्याग बिना फल की आशा के हो, सेवा सदैव बिना असन्तोष प्रकट किये हुए हो और पवित्रता सीज़र की पत्नी की भाँति ऐसी हो, जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पड़े।

(५) मेरे विवाहित जीवन में भी कोई रोमांस नहीं है। वह बिलकुल साधारण ढंग का है। मेरी पहली पत्नी १९०४ में मर गई। वह एक अभागी स्त्री थी। वह देखने में तनिक भी अच्छी नहीं थी और मैं उससे सन्तुष्ट नहीं था फिर भी जैसे सभी पति करते हैं, मैं बिना किसी प्रकार के शिकवे-शिकायत के उसका निर्वाह करता रहा। जब वह मर गई तो मैंने एक बाल-विधवा से शादी कर ली और मैं उसके साथ

बहुत सुखी हूँ। उसकी रुचि साहित्यिक हो गई है और वह कभी-कभी कहानियाँ भी लिखती है। वह निर्भीक, साहसी, न झुकने वाली और ईमानदार स्त्री है, जो अपराध की जिम्मेदारी ले लेती है और काम में प्रवृत्त होने को विवश कर देती है। उसने सविनय अवज्ञा-भंग-आन्दोलन में काम किया है और जेल हो आई है। मैं उसके साथ सुखी हूँ और जो कुछ वह नहीं दे सकती उसकी उससे आशा नहीं करता। वह टूट भले ही जाय, पर आप उसे झुका नहीं सकते।

(६) जीवन मेरे लिए अनवरत कार्य रहा है। जब मैं सरकारी नौकर था तब भी मेरा सारा समय साहित्य-रचना में लगता था। मैं काम करने में आनन्द पाता हूँ। कभी-कभी निराशा के ऐसे क्षण आते हैं जब कि आर्थिक कष्ट का अनुभव होता है, अन्यथा मैं अपने भाग्य से बिलकुल सन्तुष्ट हूँ और जितना मुझे मिलना चाहिए उससे अधिक पा लेता हूँ। आर्थिक दृष्टि से मैं असफल हूँ, व्यापार करना नहीं जानता और कभी अपनी ज़रूरतों से छुटकारा नहीं पाता। मैं कभी पत्रकार नहीं था, परन्तु परिस्थितियों ने मुझे बाध्य कर दिया और जो कुछ मैंने साहित्य से कमाया था वह सब मैंने पत्रकारिता में खो दिया, यद्यपि यह सच है कि वह रकम अधिक नहीं थी।

(७) मानव-चरित्र में जो कुछ भी सुन्दर और मानवोचित तत्व है, उसी के उद्घाटन की दृष्टि से मैं अपनी कथावस्तु का निर्माण करता हूँ। यह कार्य अत्यन्त रहस्यमय है क्योंकि कभी इसकी प्रेरणा मुझे किसी व्यक्ति से मिलती है, कभी किसी घटना से और कभी किसी स्वप्न से। लेकिन मैं अपनी कहानी का आधार मनोविज्ञान ही रखता हूँ। मित्रों के सुझावों से लाभ उठाने के लिए मैं सदा तैयार रहता हूँ।

(८) यद्यपि मैं कर्त्तव्य का भी पर्याप्त पुट देता हूँ तथापि मेरे अधिकांश पात्र यथार्थ जीवन से लिये गए हैं। जब किसी पात्र का यथार्थ में अस्तित्व नहीं होता तब वह छायामात्र, अनिश्चित और अविश्वसनीय हो उठता है।

(६) मैं रोमां रोलां की भाँति नियमित कार्य करने में विश्वास रखता हूँ।

(१०) हाँ, मेरा 'गोदान' शीघ्र छपने जा रहा है। वह लगभग ६०० पृष्ठ का होगा।

आपका ही
प्रेमचन्द

परिशिष्ट ३

सहायक ग्रन्थ

१. प्रेमचन्द की पुस्तकें

उपन्यास

हिन्दी	उर्दू
(१)….	'इसरारे मुहब्बत' (१८९८) एक संक्षिप्त उपन्यास, जो बनारस के साप्ताहिक 'आवाज़े खल्क़' में क्रमशः प्रकाशित हुआ।
(२)…	'प्रतापचन्द्र' (१९०१), जो अपने असली रूप में कभी प्रकाशित नहीं हुआ।
(३) प्रतिज्ञा या प्रेमा	'बेवा'
(४) वरदान	….
(५) ….	'जल्वाए इसरार'
(६) सेवासदन (१९१४)	'बाज़ारे हुस्न'
(७) प्रेमाश्रम (१९२२)	गोशए आफ़ियत
(८) निर्मला (१९२३)	….
(९) रंगभूमि (१९२४)	चौग़ाने हस्ती
(१०) कायाकल्प (१९२८)	पर्दए मजाज़
(११) ग़बन या कृष्णा (१९३०)	ग़बन
(१२) कर्मभूमि (१९३२)	मैदाने अमल

(१३) गोदान (१९३६) ....
(१४) मंगल सूत्र (अपूर्ण) ....

कहानियाँ (हिन्दी)

(१) सप्त सरोज (२) अग्नि समाधि (३) नवनिधि (४) प्रेरणा (५) प्रेम पचीसी (६) प्रेम पूर्णिमा (७) प्रेम प्रसून (८) प्रेम तीर्थ (९) प्रेम प्रतिमा (१०) प्रेम प्रमोद (११) प्रेम द्वादशी (१२) प्रेम पंचमी (१३) प्रेम चतुर्थी (१४) पंचफूल (१५) कफ़न (१६) समर-यात्रा (१७) मानसरोवर (आठ भाग)।

मानसरोवर के आठ भागों में सौ से अधिक कहानियाँ हैं, जिनमें आरम्भिक पुस्तकों में प्रकाशित कहानियाँ भी हैं। इन चार भागों और 'प्रेम द्वादशी', 'कफ़न' तथा 'समर-यात्रा' में लेखक की सभी प्रतिनिधि कहानियाँ मिल जाती हैं।

कहानियाँ (उर्दू)

(१) प्रेम पचीसी (२) प्रेम बत्तीसी (३) प्रेम चालीसी (४) सोज़े वतन (५) फ़िरदौसे ख़याल (६) जैदे राह (७) दुख की कीमत (८) वारदात (९) आख़िरी तौफ़ा (१०) ख़्वाबो ख्याल (११) ख़ाके परवाना।

जीवनियाँ

(१) महात्मा शेखसादी (२) दुर्गादास (३) कलम, त्याग और तलवार।

नाटक

(१) कर्बला (२) रूहानी शादी (३) संग्राम (४) प्रेम की वेदी।

निबन्ध

(१) कुछ विचार।

शिशु-साहित्य

(१) कुत्ते की कहानी (२) जंगल की कहानियाँ (३) रामचर्चा (४) मन मोदक।

अनुवाद

(१) सृष्टि का आरम्भ (२) जार्ज बर्नाड शॉ का 'मैथ्यूशिला' (३) टालस्टाय की कहानियाँ (४) सुखदास—जार्ज इलियट के 'सिलास मेरीनर' का अनुवाद (५) अहंकार—अनातोले फ्रांस की 'थाया' का अनुवाद (६) चाँदी की डिबिया—गाल्सवर्दी के 'सिल्वर बाक्स' का अनुवाद (७) न्याय—गाल्सवर्दी के 'जस्टिस' का अनुवाद (८) हड़ताल—गाल्सवर्दी के 'स्ट्राइक' का अनुवाद (९) आज़ाद कथा—सरशार के 'फ़िसानए आज़ाद' का हिन्दी रूपान्तर।

प्रेमचन्द पर आलोचनात्मक पुस्तकें

हिन्दी

(१) प्रेमचन्द : आलोचनात्मक परिचय (१९४१)—लेखक : डॉ० रामविलास शर्मा, प्रकाशक : सरस्वती प्रेस, बनारस।

पुस्तक में प्रेमचन्द के कलात्मक और मानसिक विकास का अच्छा परिचय दिया गया है। इसमें भारत की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति का चित्र है और उसकी दृष्टि से प्रेमचन्द के ग्रन्थों की व्याख्या की गई है।

(२) प्रेम और उनका युग (१९५२)—लेखक : डॉ० रामविलास शर्मा। इसमें लेखक के उपन्यासों, कहानियों और निबंधों की आलोचना है।

(३) प्रेमचन्द की उपन्यास-कला (१९४१)—लेखक प्रो० जनार्दन झा, प्रकाशक : वाणी मन्दिर छपरा। इसमें शिल्प-विधान पर दृष्टि रखकर अलोचना की गई है। इसमें चरित्र-चित्रण, कथावस्तु, प्रतिपाद्य विषय और कथोपकथन आदि अध्याय हैं।

(४) प्रेमचन्द : उनकी कृतियाँ और कला (१९४२)—सम्पादक : श्री प्रेमनारायण टण्डन, प्रकाशक : प्रयाग पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद। इसमें विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से लिये गए लेखों का संग्रह है।

(५) प्रेमचन्द : एक अध्ययन—लेखक : डॉ० रामरतन भटनागर,

प्रकाशक : किताब महल, इलाहाबाद। इसमें प्रेमचन्द के उपन्यासों का विशद अध्ययन है। लेखक ने उपन्यासों की कथावस्तु का विवेकपूर्ण विश्लेषण किया है और उनके पात्रों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। एक अध्याय में उन सामाजिक और राजनीतिक प्रभावों पर प्रकाश डाला गया है, जिन्होंने कि लेखक के मस्तिष्क के निर्माण में योग दिया। पुस्तक में मूल ग्रन्थों से लिये गए उद्धरणों की भरमार है।

(६) प्रेमचन्द—लेखिका : श्रीमती शिवरानी देवी, प्रकाशक : सरस्वती प्रेस, बनारस। यह लेखक की पत्नी द्वारा लिखी गई ऐसी रोचक और सुन्दर जीवनी है, जिसमें इस महान और प्रिय लेखक की घरेलू बातों के उल्लेख द्वारा उनका पूर्ण चित्र अंकित किया गया है।

अंग्रेजी

(७) प्रेमचन्द—लेखक : श्री मदनगोपाल, प्रकाशक : बुक एबोड सर्क्यूलर रोड, लाहौर। इसमें प्रकाशन की तिथि का उल्लेख नहीं है। इस निबन्ध में प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों पर अत्यन्त रोचकता से विचार किया गया है। यह लेखक के जीवन के सम्बन्ध में भी उपयोगी जानकारी देती है। अंग्रेजी भाषा में प्रेमचन्द पर यह पहली आलोचनात्मक पुस्तक है।

सामान्य पुस्तकें

(१) माडर्न हिन्दी लिटरेचर (१९३८)—लेखक : डॉ० इन्द्रनाथ मदान, प्रकाशक : मिनर्वा बुक शाप, लाहौर।

(२) लिटरेचर एण्ड मार्क्सिज़्म (१९४९)—लेखक : एंगिल फ्लोरस, प्रकाशक : इण्डिया पब्लिशर्स, इलाहाबाद।

(३) लेनिन ऑन आर्ट एण्ड लिटरेचर (१९४३)—लेखक : ए० वी० लूनाचारस्की, प्रकाशक : ओरियण्टल पब्लिशिंग हाउस, बनारस।

(४) प्रॉबलम्स ऑफ़ सोवियट लिटरेचर—लेखक : मैक्सिम गोर्की, प्रकाशक : मार्टिन लारेंस लन्दन।

(५) टाल्स्टाय—लेखक : स्टीफ़नज्विग, प्रकाशक : कैसल एण्ड कम्पनी, लन्दन।

(६) शरच्चन्द्र : चिन्तन व कला (१९५४)—लेखक : डॉ० इन्द्रनाथ मदान, प्रकाशक : हिन्दी भवन, जलन्धर।

(७) नॉविल एण्ड दी माडर्न वर्ल्ड (१९३८)—लेखक : डेविड डेचिस, प्रकाशक : यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो।

(८) लिटरेचर एण्ड सोसायटी—लेखक : श्री डेविड डेचिस, प्रकाशक : विक्टर गुलांस लिमिटेड, लन्दन।

(९) एन ऑटोबायग्राफ़ी—लेखक : श्री जवाहरलाल नेहरू, प्रकाशक : बोडले हैड, लन्दन।

(१०) कथाकार प्रेमचन्द (१९४७)—लेखक : मन्मथनाथ गुप्त। इस बृहत्काय ग्रन्थ में प्रेमचन्द की कृतियों का प्रगतिशील दृष्टिकोण से विशद विवेचन है।

(११) प्रेमचन्द : साहित्यिक विवेचन (१९५२)—लेखक : नन्ददुलारे वाजपेयी। इस पुस्तक में उपन्यास-परम्परा पर निबन्ध के अतिरिक्त प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों और चुनी हुई कहानियों का संतुलित, मौलिक अथवा संक्षिप्त विवेचन है।

(१२) प्रेमचन्द—लेखक : डॉ० त्रिलोकीनारायण दीक्षित। यह पुस्तक डॉ० दीक्षित का पी-एच० डी० के लिए प्रस्तुत पुस्तक का हिन्दी रूपान्तर है।

Veena Gulleri M.A